नारी की गरिमा गिराने में
घाटा ही घाटा

— भगवती देवी शर्मा

नारी की गरिमा गिराने में घाटा ही घाटा

लेखक

माता भगवती देवी शर्मा

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स (०५६५) २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१३ मूल्य ९.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :

माता भगवती देवी शर्मा

पुनरावृत्ति सन् **२०१३**

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

नारी की गरिमा समझें और उसे सम्मान दें

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के नाम के साथ 'देवी' लिखने और संबोधित करने की परंपरा आदिकाल से चली आ रही है। भगवती देवी, लक्ष्मी देवी, सरस्वती देवी, कमला देवी आदि नाम इस बात के प्रतीक हैं कि हिंदू विचारधारा में नारी को देव-श्रेणी की सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है।

ऐसा अनायास ही नहीं हुआ। इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए नारियों ने चिरकाल से गहन तपश्चर्या की है। **'पुण्या कापि पुरंध्री', 'नारि कुलैक शिखामणिः'** अर्थात उसने अपनी संपूर्ण शक्तियों के चरम विकास द्वारा ही यह गौरव प्राप्त किया।

लोक-कल्याण की विधायिका, पथ-प्रदर्शिका और संरक्षिका शक्ति का नाम ही देवी है। अपने इस रूप में भारतीय नारी आज भी उन प्राचीन गुणों को धारण किए हुए है, जिनके द्वारा अतीतकाल में उसने समाज के समग्र विकास में योगदान दिया था। यद्यपि वह तेजस्विता आज धूमिल पड़ गई है, तथापि यदि उस पर पड़े मल-आवरण के विक्षेप को हटा दिया जाए तो नारी सत्ता अपनी पूर्ण महत्ता को फिर से ज्यों की त्यों चरितार्थ कर सकती है।

ब्रह्मपुराण में व्यास-जाबालि संवाद के रूप में एक आख्यायिका आती है। व्यास जी जाबालि को बताते हैं-**'पितुरप्यधिका माता गर्भधारण पोषणात्। अतोहि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृ समो गुरुः।'** अर्थात हे जाबालि! पुत्र के लिए माता का स्थान पिता से बढ़कर है, क्योंकि वही उसे गर्भ में धारण करती है, अपने रस, रक्त और शरीर से ही नहीं भावनाओं और संस्कारों से भी पालन-पोषण करती है। इसलिए वह सर्वोपरि मार्गदर्शक और कल्याणकारक गुरु के रूप में प्रतिष्ठा की

पात्र है। '**नास्ति पुत्र समं प्रियः।**' अर्थात उसे पुत्र से बढ़कर और कोई प्रिय नहीं। अतएव मनुष्य मात्र का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह परम आध्यात्मिक शक्ति के रूप में 'माँ' को प्रतिष्ठा प्रदान करे, प्रत्येक नारी में भाव वत्सला नारी का रूप देखे।

'**नास्ति भार्या समं मित्र**' अर्थात माँ के बाद नारी का दूसरा रूप पत्नी का, सहधर्मिणी का है। इस रूप में उसे सबसे बड़े विश्वासपात्र मित्र की संज्ञा दी गई है। जीवन की कठिन परिस्थितियों में जब संसार के अन्य सभी लोग साथ छोड़ जाते हैं, धन संपत्ति का विनाश हो जाता है, शरीर रोगी और निर्बल हो जाता है, उस स्थिति में भी सहनशीला पत्नी ही पुरुष का साथ देती है और उसकी हर कठिनाई में और कोई योगदान भले ही न बन पड़े, किंतु पुरुष के मनोबल, उसकी आशा और संवेदनशीलता को बल प्रदान करती रहती है।

'**नास्ति भगिनी समा मान्या**' अर्थात बहन के समान सम्मान देने वाला और कोई नहीं। इस रूप में नारी ने पुरुष को जो स्नेह प्रदान किया है, उससे हमारे सामाजिक संबंध और जातीय बंधन सुदृढ़ हुए हैं। भारतीय वीरों को बुराइयों से लड़ने की प्रेरणा देने वाली, उनके गौरवपूर्ण मस्तक का तिलक करने वाली बहन का संबंध आज भी कितना मधुर है, इस बात को रक्षाबंधन पर्व पर हर भारतीय अनुभव किया करता है।

'**गृहेषु तनया भूषा**' अर्थात कन्या के रूप में नारी घर की शोभा है। वह अपने आमोद-प्रमोद से गृहस्थ जीवन में जो सरसता लाती है, वह अपेक्षाकृत पुत्र नहीं ला पाते। कन्या पुत्र की अपेक्षा कहीं अधिक भावनाशील होती है। अतएव उससे मिलने वाली स्नेहधारा का मूल्य और महत्त्व बहुत अधिक है।

अपने इन चारों रूपों में अतीतकालीन भारतीय नारी ने पुरुष वर्ग के साथ जो उपकार किए हैं, उनकी तुलना किसी भी दैवी सत्ता के साथ सहर्ष की जा सकती है। उसमें उसका पलड़ा भारी ही बैठेगा।

अतएव उसका 'देवी' कहलाना प्रत्येक दृष्टि से उचित और न्यायपूर्ण है। उसकी इस गरिमा को हमें पूरी-पूरी प्रतिष्ठा भी देनी चाहिए।

नारी की तुलना में नर अधिक बलिष्ठ-परिपुष्ट पाया जाता है। पर क्या यह प्रकृति की देन है ? क्या यह उसका अपना उपार्जन है? गहराई से देखने पर पता चलेगा कि यह बलिष्ठता उसे माता के, पत्नी के, भगिनी के, पुत्री के अजस्र अनुदानों से ही संभव हुई है। परिपुष्ट वृक्षों की समृद्धि वस्तुतः पवन का, भूमि का, जल का, बीज का अनुदान मात्र है। उन चारों सत्ताओं ने अपना स्नेहसिक्त सहयोग समर्पित न किया होता तो वृक्ष का अस्तित्व भी प्रकाश में न आता। उसका विस्तार-वैभव तो पीछे की बात थी। नारी के सहयोग के अभाव में नर की बलिष्ठता तो दूर उसकी सत्ता तक की संभावना दृष्टिगोचर नहीं होती।

नारी की वरिष्ठ और नर को कनिष्ठ ठहराने वाली अपनी सांस्कृतिक मान्यता हर दृष्टि से सही है। दानी बड़ा होता है और उपभोक्ता छोटा। नारी नर पर जो स्नेह-सौजन्य भरा अजस्र सहयोग बरसाती है, उसी ने उसे बलिष्ठ बनाया है। नर बलिष्ठता का अहंकार कर सकता है, पर उसे वरिष्ठ नहीं माना जा सकता है। उपहार पाकर कोई अपने सौभाग्य को सराह सकता है, पर उस अनुदानी की समता नहीं कर सकता जिसने अपने स्वेद-कणों और स्नेह-बिंदुओं के मणि-मुक्तकों से उस हार-उपहार को विनिर्मित किया और उदारतापूर्वक गले में धारण कराया। वह माता हो अथवा पत्नी, दोनों ही रूपों में आदि से अंत तक अनुदानों से भरी रही है। भगिनी और पुत्री मूर्तिमान कविताएँ हैं। उनसे अधिक पवित्र ममता और पवित्रता कदाचित ही इस संसार में अन्यत्र कहीं दीख पड़े। गंगा और नर्मदा के दर्शन करके जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उससे सहस्र गुनी सुषमा भगिनी और पुत्री की समीपता सहज ही बिखेर देती है। वे पुष्प की तरह निश्छल और हिम की तरह शीतल होती हैं। कला का उच्चतम उद्गम कभी किसी को देखना हो तो वह इन्हीं गंगोत्री, यमुनोत्री उद्गमों से झरता दृष्टिगोचर होगा।

नर और नारी की अनन्यता, एकरूपता, समस्वरता का दिग्दर्शन कराते हुए देवताओं का नामोच्चार सम्मिलित रूप से किया जाता है। सीताराम, राधेश्याम, उमा महेश, लक्ष्मी नारायण, प्रकृति पुरुष आदि नामों का जप-कीर्तन होता है। इनमें प्रथम स्थान नारी को और द्वितीय स्थान नर को मिला है। इस संयुक्तता का संकेत यही है कि दोनों के समन्वय से अपूर्णता-पूर्णता में विकसित होती है। गाड़ी के दो पहिये मिलकर गति उत्पन्न करते हैं, दोनों हाथों से ताली बजती है आदि उपमाओं में नर-नारी की समन्विति का मूल्यांकन किया जा सकता है। एक पंख का पक्षी तथा लँगड़े, टोंटे, काने, बूचे, अर्द्धांग, पक्षाघात ग्रस्त मनुष्य की जो उपहासास्पद स्थिति होती है, उससे भी दयनीय स्थिति एकांगी जीवन की होती है। आवश्यकतानुसार कोई अविवाहित रह सकता है, पर माता के अनुदान और पुत्री के सौजन्य को पाए बिना किसी के अंत:करण की कली नहीं खिल सकती। सगी माता और सगी पुत्री, भगिनी न होने पर वह अन्यत्र से उस अभाव की पूर्ति करने के लिए व्याकुल रहता है।

यों नारी के लिए भी नर के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है, वह भी उसका प्रतिदान पाती है। अविवाहित रहना नारी के लिए भी कठिन नहीं है। असंख्यों नारी पति के बिना प्रसन्नता का जीवन जी सकती हैं पर पिता के बिना किसी का गुजारा नहीं। सगा न सही माना हुआ सही, अन्यान्य लोगों के प्रति मातृत्व और पुत्रत्व की मान्यता स्थिर करके नारी को एक अभाव की पूर्ति अनुभव होती है। पति-पत्नी का रिश्ता मध्यवर्ती है और कारणवश उसमें विक्षेप की भी गुंजाइश है पर नर और नारी के बीच बँधे हुए उपर्युक्त सूत्र ऐसे हैं जिनमें बिना विक्षेप के सघन सद्भाव सूत्र बँधे रह सकते हैं। इन पंक्तियों में चर्चा वरिष्ठता की हो रही है। कनिष्ठ-वरिष्ठ का प्रसंग कभी सामने आया तो सम्मानपूर्ण प्राथमिकता नारी को ही मिलेगी। मनु भगवान ने उसे पूजनीय इसी दृष्टि से ठहराया है, वह मातृशक्ति के

प्रत्येक रूप में पूज्य है। माता की तरह पुत्री के चरण स्पर्श की भी अपनी परंपरा है।

भारतीय महिलाओं के नाम के साथ देवी शब्द प्रयुक्त होता है। कृष्णा देवी, शकुंतला देवी, शांति देवी, पुष्पा देवी, उर्मिला देवी, सरला देवी, कमला देवी आदि अधिकांश नामकरणों में नारी की सहज विशेषता का संकेत है। देवत्व देने की वृत्ति का संकेत करता है। 'देव' वह जिसका स्वभाव देने का हो, 'लेव' वह जो लेने भर में रुचि रखे। नारी जीवन में पाना कम और देना अधिक है। श्रम से लेकर भाव अनुदानों तक उसी का ऋण नर के ऊपर लदा रहता है। स्वभावतया नारी में दया, करुणा, ममता, सेवा, सद्भावना, उदारता, क्षमा जैसी देव-वृत्तियों का बाहुल्य रहता है। पाप, अपराध, स्वार्थ और क्रूर कर्मों में उसका भाग न्यूनतम ही रहता है। निष्ठुर-नृशंसता के कुकृत्यों में नर ही आगे रहता है, नारी उनसे विरत ही रहती है और नर को भी अपनी सामर्थ्य भर अनाचार से रोकती रहती है। यह देववृत्ति उसे जन्मजात रूप से ईश्वरप्रदत्त उपहार के रूप में मिली है। अस्तु, देवी शब्द से संबोधन हर दृष्टि से उचित ही है। नामकरणों में देवी शब्द की संलग्नता इस दृष्टि से सार्थक ही ठहरती है।

आध्यात्मिक उपासनाओं में प्रातः-सायं संध्याकृत्य को अनिवार्य माना गया है और यह संध्या गायत्री के जप के बिना हो ही नहीं सकती। वेदमाता गायत्री को आदिशक्ति के रूप में माना गया है। ज्ञान-विज्ञान सब कुछ उसी से विस्तृत हुआ है। शिखा और सूत्र हिंदू धर्म के दोनों ही प्रतीक गायत्री के विग्रह हैं। इनके उपरांत सरस्वती, लक्ष्मी, काली की त्रिविध देवसत्ता है। शक्ति साधना और शक्तिपीठों के रूप में अन्यान्य उपासनाओं का विस्तार हुआ है। देव उपासनाओं में भी उनके शक्ति तत्त्व को ही सक्रिय सक्षम माना गया है। प्रकारांतर से पूरा ही अध्यात्म विज्ञान शक्ति साधना के रूप में मूर्तिमान है। एकाकी शक्तिपीठ तो हैं, पर एकाकी देवता हनुमान आदि एक-दो ही दृष्टिगोचर होते हैं।

तीन प्रत्यक्ष देवताओं में माता, पिता और गुरु का उल्लेख हुआ है। इन तीनों में माता प्रथम है। यह स्थापना इसलिए है कि मनुष्य को अपने प्रथम उपकारकर्त्ता के प्रति कृतज्ञतापूर्वक नमन करने का स्मरण सदा ही बना रहे।

नारी ब्रह्मविद्या है, श्रद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, कला है और वह सब कुछ है जो इस संसार में सर्वश्रेष्ठ के रूप में दृष्टिगोचर होता है। नारी कामधेनु है, अन्नपूर्णा है, सिद्धि है, ऋद्धि है और वह सब कुछ है जो मानव प्राणी के समस्त अभावों, कष्टों और संकटों के निवारण करने में समर्थ है। यदि उसे श्रद्धासिक्त सद्भावना से सींचा जाए तो यह सोमलता विश्व के कण-कण को स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत कर सकती है।

पिछले कुछ वर्षों से यह मान्यता चली आ रही है कि नर वरिष्ठ और नारी कनिष्ठ है। यह बात कठोर शारीरिक श्रम की क्षमता के क्षेत्र में ही सही उतरती है। बाकी ९९ प्रतिशत क्षेत्रों में गलत है। नारी की प्रजनन गरिमा के कारण उसका शारीरिक दृष्टि से थोड़ा दुर्बल होना स्वाभाविक है। मासिकधर्म में उसे हर महीने अपने शरीर में से कुछ घटाना पड़ता है। गर्भधारण और दूध पिलाने में भी उसका शरीर निचुड़ता है, पुरुष को इस प्रकार खरच नहीं करना पड़ता, इसलिए वह शारीरिक दृष्टि से मजबूत बना रहता है। नारी अपने शरीर का एक अंश सृष्टि-संचालन के लिए निरंतर समर्पित करती रहती है। उसके इस त्याग-बलिदान ने ही सृष्टिक्रम को जीवित रखा है। दानी अपेक्षाकृत निर्धन ही रहता है। ऋषि और संत लेते कम और देते ज्यादा थे, इसलिए उनके शरीर दुर्बल रहते थे। तपस्वियों की काया नहीं, आत्मा बलिष्ठ होती है। नारी की गणना इसी वर्ग में आती है। उसकी शारीरिक दुर्बलता के पीछे जो महान कारण सन्निहित हैं, उन्हें देखते हुए उसकी पुरुष की तुलना में थोड़ी कमजोर रहना वंदनीय-प्रशंसनीय ही है।

स्त्री और पुरुष के शरीर की संरचना में प्रकृति ने थोड़ा अंतर रखा है। भावना प्रधान होने के कारण संभवत: कठोर कार्य करने का भार उस पर न पड़े, इस दृष्टि से यह प्रकृति का कोई पक्षपात या अन्याय नहीं है। परंतु यह प्रयोजन है कि जिसका जो क्षेत्र है, वह उसी अनुपात से आवश्यक सामग्री प्राप्त करे। पुरुष को कठोर शारीरिक परिश्रम करने के लिए प्रकृति ने उपयुक्त समझा है, इसलिए उसकी शरीर-रचना में उसी प्रकार की विशेषताएँ भरी गई हैं। पुरुष श्रम-प्रधान, नारी भावना-प्रधान बनाकर प्रकृति ने दोनों के समन्वय से अपूर्णता को पूर्णता में बदलने का प्रयत्न किया है। पारस्परिक निर्भरता भी उसका एक कारण हो सकती है। दोनों अपने को अपूर्ण समझें और मिलकर पूर्णता प्राप्त करें अथवा दोनों अपने को एक अतिरिक्त संपदा का धनी मानकर एक-दूसरे को कृपापूर्वक उससे लाभान्वित करने का गर्व गौरव अनुभव करें। वैसे आवश्यकता इसकी भी नहीं है। न कोई अपने को अभावग्रस्त समझे और न गर्व करे। परस्पर आत्म-समर्पण का आनंद लेने के लिए स्वेच्छा से, विवशता से अथवा प्रकृति-प्रेरणा से दोनों समन्वयात्मक जीवन जिएँ, भिन्नता के सम्मिश्रण की एक अभिनव प्रक्रिया अपनाकर दोनों आनंद-उल्लास भरा सर्वांगपूर्ण जीवनक्रम अपनाएँ। यह भी इस भिन्नता का प्रयोजन हो सकता है।

शरीर की दृष्टि से नारी, नर की तुलना में कुछ हलकी पड़ती है, पर भावना की दृष्टि से इतनी भारी है कि उसकी तोल में दस नरों की भाव संपदा मिलकर भी हलकी पड़ेगी।

यह अंतर इसलिए भी है कि दोनों का परस्पर घनिष्ठ सहयोग रहते हुए भी कार्य क्षेत्र पृथक-पृथक बना रहे। नारी विश्व का, व्यक्ति का भावनात्मक उत्कर्ष बनाए और बढ़ाए रहे। नर संपदा एवं सुविधा-उपार्जन करता रहे। नारी की वरिष्ठता अध्यात्म क्षेत्र में है, वह भाव-स्तर का नेतृत्व करती है, पुरुष की कठोरता उसे भौतिक क्षेत्र सँभालने की सुविधा देती है।

नर और नारी यों दोनों ही अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों का अपना महत्त्व और स्तर है। दोनों के परस्पर सम्मिश्रण सहयोग से ही अपूर्णता का पूर्णता में विकास होता है।

नारी के अंत:करण में कोमलता, करुणा, ममता, सहृदयता एवं उदारता की पाँच देव-प्रवृत्तियाँ सहज-स्वाभाविक रूप से अधिक हैं। इसलिए उसे 'देवी' शब्द अलंकार से सम्मानित किया जाता है। यदि यह बाहुल्य न होता तो वह पत्नी का समर्पणपरक, माता की जान जोखिम में डालने जैसी बलिदानी प्रक्रिया, बहन और पुत्री की अंतरात्मा को गुदगुदा देने वाली विशेषता कैसे संभव होती? उसके इन दैवी गुणों ने ही उसे इस प्रकार का परमार्थपरायण तपस्वी जीवन जी सकने की क्षमता प्रदान की है।

आज जिस नारी को हमने घर की बंदिनी, परदे की प्रतिमा और पैर की जूती बनाकर रख छोड़ा है और जो मूक पशु की तरह सारा कष्ट, सारा क्लेश विष घूँट की तरह पीकर स्नेह का अमृत ही देती है, उस नारी के सही स्वरूप तथा महत्त्व पर निष्पक्ष होकर विचार किया जाए तो अपनी ही आत्मा अपने धिक्कार को अब और अधिक नहीं सुनना चाहती। मानवता के नाते, सहधर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के नाते उसे उसका उचित स्थान दिया ही जाना चाहिए। अधिक दिनों उसके अस्तित्व, व्यक्तित्व तथा अधिकारों का शोषण राष्ट्र को ऐसे गर्त में गिरा सकता है जिससे निकल सकना कठिन हो जाएगा। अत: कल्याण तथा बुद्धिमत्ता इसी में है कि समय रहते चेत उठा जाए और अपनी इस भूल को सुधार ही लिया जाए।

नारी का सबसे बड़ा महत्त्व उसके जननी पद में निहित है। यदि जननी न होती, तो कहाँ से सृष्टि का संपादन होता और कहाँ से समाज तथा राष्ट्रों की रचना होती। यदि माँ न हो तो वह कौन-सी शक्ति होती जो संसार से अनीति एवं अत्याचार मिटाने के लिए शूरमाओं को धरती पर उतारती। यदि माता न होती तो यह बड़े-बड़े वैज्ञानिक,

प्रकांड पंडित, अप्रतिम साहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी, महात्मा एवं महापुरुष किसकी गोद में खेल-खेलकर धरती पर पदार्पण करते। नारी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की जननी ही नहीं, वह जगज्जननी है। उसका समुचित सम्मान न करना अपराध है, पाप तथा अमनुष्यता है।

नारी गर्भ धारण करती, उसे पालती, शिशु को जन्म देती और तब तक, जब तक कि वह अपने पैरों नहीं चल पाता और अपने हाथों नहीं खा पाता, उसे छाती से लगाए अपना जीवन रस पिलाती रहती है। अपने से अधिक संतान की रक्षा एवं सुख-सुविधा में निरत रहती है। खुद गीले में सोती और शिशु को सूखे में सुलाती है। उसका मल-मूत्र साफ करती है। उसको साफ-सुथरा रखने में अपनी सुध-बुध भूली रहती है। इस संबंध में हर मनुष्य किसी न किसी नारी का ऋणी है। ऐसी दयामयी नारी का उपकार यदि तिरस्कार तथा उपेक्षा से चुकाया जाता है तो इससे बड़ी शर्म की बात और क्या हो सकती है?

पत्नी के रूप में उसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है। पत्नी के बिना पति का व्यक्तित्व पूरा नहीं होता। उसी की महिमा के कारण पुरुष गृही होने का गौरव पाता है और पत्नी ही वह माध्यम है जिसके द्वारा किसी की वंश परंपरा चलती है। यह पत्नी की ही तो उदारता है कि वह पुरुष के पुरुषत्व को पुत्र में बदलकर उसका सहारा निर्मित कर देती है। पुरुष के प्यार, स्नेह तथा उन्मुक्त आवेगों की अभिव्यक्ति करने में पत्नी का कितना हाथ है, इसे सभी जानते हैं। परेशानी, निराशा, आपत्ति अथवा जीवन के निविड़ अंधकार में वह पत्नी के सिवाय कौन है जो अपनी मुस्कानों से उजेला कर दिया करे, अपने प्यार तथा स्नेह से हृदय में नवजीवन जगाकर आश्वासन प्रदान करता रहे। पत्नी का सहयोग पुरुष के सुख में चार चाँद लगा देता है और दुःख में वह उसकी साझीदार बनकर हाथ बटाया करती है। दिनभर बाहर काम करके और तरह-तरह के संघर्षों से थककर

आने पर भोजन, स्नान तथा आराम-विश्राम की व्यवस्था पत्नी के सिवाय और कौन करेगा?

पुरुष एक उद्योगी तथा उच्छृंखल इकाई है। परिवार बसाकर रहना उसका सहज स्वभाव नहीं है। यह नारी की ही कोमल कुशलता है जो उसे पारिवारिक बनाकर प्रसन्नता की परिधि में परिभ्रमण करने के लिए लालायित बनाए रखती है। पत्नी ही पुरुष की उद्योग उपलब्धियों को व्यवस्था एवं उपयोगिता प्रदान करती है। पुरुष, पत्नी के कारण ही गृहस्थ तथा प्रसन्नचेता बनकर सामाजिक भद्र जीवन बिताया करता है। पत्नीरहित पुरुष का समाज में अपेक्षाकृत कम आदर होता है। परिवारों में सामाजिकता का आदान-प्रदान उन्हीं के बीच होता है, जो पारिवारिक तथा पत्नीवंत होते हैं। पत्नी की परिधि पुरुष को अनेक प्रकार की दुर्वृत्तियों से बचाए रहती है। पत्नी के रूप में नारी का यह महत्त्व कुछ कम नहीं है। यदि आज संसार से नारी का सर्वथा अभाव हो जाए तो कल से ही पुरुष पशु हो उठे। सारी समाज व्यवस्था उच्छृंखल हो उठे और सृष्टि का यह व्यवस्थित स्वरूप अस्त-व्यस्त हो जाए।

नारी को अर्द्धांगिनी ही नहीं सहधर्मिणी भी कहा गया है। पुरुष का कोई भी धर्मानुष्ठान पत्नी के बिना पूरा नहीं होता। बड़े-बड़े राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों में भी यजमानों को अपनी पत्नी के साथ ही बैठना पड़ता था और आज भी षोडश-संस्कारों से लेकर तीर्थ स्नान तक का महत्त्व तभी पूरा होता है, जब गृहस्थ पत्नी को साथ लेकर पूरा करता है। किसी भी गृहस्थ को सामान्य दशा में अकेले धर्मानुष्ठान करने का निषेध है। इतना ही नहीं, भारतीय धर्म में तो नारी को और भी अधिक महत्त्व दिया गया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवताओं का क्रिया-कलाप भी उनकी सहधर्मिणियों-सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती के बिना पूरा नहीं होता। कहीं किसी स्थान पर भी यह अपनी शक्तियों रहित नहीं पाए जाते। विद्या, वैभव तथा वीरता की

अधिष्ठात्री देवियों के रूप में भी नारी की ही प्रतिष्ठा व्यक्त की गई है और उसे शारदा, श्री तथा शक्ति के नामों से पुकारा गया है।

नारियों की धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवाओं के लिए इतिहास साक्षी है, जिससे पता चल सकता है कि नारी पुरुष से किसी क्षेत्र में भी पीछे नहीं है। अनुसूया, गार्गी, मैत्रेयी, शतरूपा, अहिल्या, मदालसा आदि धार्मिक; सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयंती आदि पौराणिक तथा पद्मावती, वीरबाला, वीरमती, लक्ष्मीबाई व निवेदिता, कस्तूरबा प्रभृति नारियाँ राष्ट्रीय व सामाजिक क्षेत्र की प्रकाशवती तारिकाएँ है। वेद तथा इतिहास के ग्रंथों का अनुशीलन करने से पता चलता है कि प्रारंभिक समय में जब साधनों की कमी होने से पुरुषों को प्रायः जंगलों से आहार सामग्री प्राप्त करने तथा आत्मरक्षा के कामों में अधिक ध्यान देना पड़ता था, तब व्यवस्था, ज्ञान-विज्ञान तथा सभ्यता संस्कृति संबंधी विषयों में अधिकांश काम नारियाँ ही किया करती थीं। इसलिए अनेक तत्त्ववेत्ता, अन्वेषक मनुष्यों की आदिम सभ्यता की जन्मदात्री नारी को ही मानते हैं। ऐसी महत्त्वपूर्ण तथा जीवनदायिनी नारी की उपेक्षा करना कहाँ तक ठीक है? यह एक विचारणीय विषय है।

नारी अपने विभिन्न रूपों में सदैव मानव जाति के लिए त्याग, बलिदान, स्नेह, श्रद्धा, धैर्य, सहिष्णुता का जीवन बिताती रही है। नारी धरा पर स्वर्गीय ज्योति की साकार मानी गई है। उसकी वाणी जीवन के लिए अमृत-स्रोत है। उसके नेत्रों में करुणा, सरलता और आनंद के दर्शन होते हैं। उसके हाथ में संसार की समस्त निराशा और कटुता मिटाने की क्षमता है। नारी संतप्त हृदय के लिए शीतल छाया और स्नेह-सौजन्य की साकार प्रतिमा है। नारी पुरुष की पूरक सत्ता है। वह मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है, उसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है। नारी ही उसे पूर्ण बनाती है। जब पुरुष का जीवन अंधकार-युक्त हो जाता है तो नारी की संवेदनापूर्ण मुस्कान उसमें उजेला बिखेर देती है। पुरुष के कर्त्तव्ययुक्त शुष्क जीवन की वह सरसता तथा उजड़ी

जिंदगी की हरियाली मानी गई है। नारी के वास्तविक स्वरूप पर विचार करने से विदित होता है कि वह पुरुष के लिए पूरक सत्ता ही नहीं, वरन उर्वरक भूमि के रूप में भी उसकी उन्नति, प्रगति तथा कल्याण का साधन बनती है। स्वयं प्रकृति ही नारी के रूप में सृष्टि के निर्माण, पालन-पोषण और संवर्द्धन का कार्य कर रही है।

इसलिए नारी की गरिमा गिराने का अर्थ है-अपनी उद्‌गम शक्ति की गरिमा को गिराना। जो अपनी जननी, भगिनी, दुहिता और अपनी जीवन सहचरी की गरिमा को गिरा सकता है, उसकी स्वयं की गरिमा का फिर क्या आधार शेष रहता है। अविकसित माँ, असंस्कृत बहन, उपेक्षित बेटी और अपरिष्कृत मनोभूमि की पत्नी के साथ रहकर भी भला कोई व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता का दंभ रखे, डींग हाँके तो उस पर हँसने के सिवाय किया भी क्या जा सकता है? नारी के किसी भी रूप की गरिमा घटाने पर पुरुष को घाटा ही घाटा उठाना पड़ता है। नारी के विकास में ही उसका अपना हित सन्निहित है।

❐

विकास की समान अधिकारिणी नारी

एक पक्ष प्रबल है, दूसरा निर्बल, एक आश्रयदाता है, दूसरा आश्रित, एक स्वामी है दूसरा सेवक, एक प्रमुख है दूसरा गौण–जब तक हमारे दिलों में यह मान्यता घर किए रहेगी, तब तक समस्या का समाधान संभव नहीं। नर–नारी जीवनसत्ता के दो समान तत्त्व हैं। दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। व्यवस्था, विवेक और नैसर्गिक गुणों की दृष्टि से कार्य विभाजन तो हो सकता है, पर यह कोई सनातन नियम नहीं है कि पुरुष अधिकार प्रधान जीवन जिए और नारी उसकी क्रीतदासी बनकर जीवन का भार ढोए। पुरुष स्वभाव से संघर्षशील भूमिका निभाता है। इसके लिए प्रकृति ने उसे अधिक शक्ति दी है। नारी में भावनाओं की, मानवीय सम्वेदना की मात्रा अधिक होती है, इसलिए व्यावहारिक जीवन में उसके छलावे की संभावनाएँ अधिक हैं। स्त्री स्वभाव से कोमल और पुरुष कठोर होता है। मनीषियों के इसी तत्त्वचिंतन ने यह व्यवस्था दी कि पुरुष उपार्जन का, श्रम का, बाह्य व्यवस्था का कार्य सँभाले और नारी गृह व्यवस्था, गृह सुसज्जा तथा परिवार पालन का उत्तरदायित्व सँभाले। बच्चों के विकास और कौटुंबिक जीवन में जिस कोमलता तथा सरसता की आवश्यकता होती है, वह कार्य जिस कुशलता से नारी संपन्न कर सकती है पुरुष नहीं। पर यह उत्तरदायित्व उपार्जन जैसे कठोर कर्मों के उत्तरदायित्वों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव उनके लिए भी वही योग्यताएँ आवश्यक और अनिवार्य हैं, जो बाह्य क्षेत्र की जिम्मेदारियाँ सँभालने के लिए।

बाह्य क्षेत्रों में आवश्यक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि अपनी जानकारी बढ़े, दृष्टिकोण चौड़ा हो ताकि उचित निष्कर्ष निकाले जा सकें। गृह व्यवस्था में उससे कहीं अधिक सूझ–बूझ की आवश्यकता होती है। इसलिए नारी का शिक्षित और स्वाध्यायशील होना पुरुषों से कम आवश्यक नहीं, किंतु इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि अपने

देश में नारी-शिक्षा का स्तर बहुत ही चिंताजनक है। शहरों में तो यह औसत बढ़ा भी है, पर आज भी सुदूर गाँवों में लड़कियों को पढ़ाना अच्छा नहीं समझा जाता। एक तो कन्या विद्यालयों का इस देश में वैसे ही अभाव है, जहाँ हैं भी वहाँ अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण लोग कन्याओं को पढ़ाना अच्छा नहीं समझते। यदि पढ़ाया भी तो प्राइमरी शिक्षा या अधिक से अधिक हाईस्कूल की शिक्षा से उन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया जाता। लोगों को शंका रहती है कि इससे उनका चाल-चलन बिगड़ेगा, बच्ची के किशोरी होते ही उसके विवाह की बात शुरू हो जाती है। इस तरह अपरिपक्व बुद्धि और शारीरिक स्थिति में गृहस्थ में डाल दी गई लड़कियाँ जिंदगी भर बच्चे पैदा करने की मशीन की तरह रह जाती हैं। इस स्थिति में उन्हें पारिवारिक प्रताड़नाओं का किस बुरी तरह शिकार होना पड़ता है-यह सहज समझा जा सकता है। जिस बालक की बुद्धि का विकास न हुआ हो, जिसमें सांसारिक और पारिवारिक परिस्थितियों के अध्ययन तथा अपने विवेक से उनका निष्कर्ष निकालने की क्षमता ही न हो वह गृहस्थ जैसे महान सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे कर सकता है? मदालसा ने जब जिस तरह का बालक चाहा, तब वैसा ही बालक उत्पन्न किया। इसके लिए उनका आत्मिक और बौद्धिक स्तर कितना ऊँचा रहा होगा, उनका चिंतन और दृष्टिकोण कितना विशाल रहा होगा, यह कोई कहने की बात नहीं? क्या किसी अशिक्षित नारी में यह गुण हो सकते हैं? शकुंतला अशिक्षित रहकर भरत बना सकती थी क्या? गार्गी ने हजारों लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन किया, मैत्रेयी ने उस समय की सैकड़ों महिलाओं को आत्मोत्कर्ष कर उद्‌बोधन किया, इतिहास काल और स्वाधीनता संग्राम में जिन महिलाओं ने यश पाया है, क्या वे शिक्षा के अभाव में वैसा कर सकती थीं? हम यह सब पढ़ते और समझते हुए भी नारी शिक्षा से मुँह मोड़ें तो इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है?

अंध श्रद्धा और अविश्वास में अधिकांश स्त्रियाँ छली और ठगी जाती हैं। इसमें दोष नारी का नहीं उस प्रवृत्ति का है जिसमें उन्हें हेय मानकर शिक्षा से वंचित रखने का समर्थन किया जाता है। जिन घरों में पुरुष शिक्षित होते हैं, पर स्त्रियाँ अनपढ़ गँवार होती हैं, वहाँ किस तरह की अशांति और कलह छाया रहता है, आज हमारा सारा समाज इस बात का जीता-जागता प्रमाण है।

दुर्भाग्य से यदि स्त्री कहीं विधवा हो जाती है, तब उसे कितनी अधिक सामाजिक अपमान की जिंदगी जीनी पड़ती है, यह सर्वविदित है। यदि स्त्री शिक्षित है, तब वह स्वाभिमानपूर्वक अपना, अपने आश्रितों का भरण-पोषण कर सकती है, पर इस स्थिति के विपरीत वह सामाजिक अनाचार बढ़ाने में सहायक ही होती है। अतएव शिक्षा के क्षेत्र में उसे समता का अधिकार दिया जाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इस बात की आवश्यकता नहीं कि उन्हें कीमती आभूषण, शृंगार प्रसाधन, मनोरंजन और विनोद अधिक मात्रा में दिया जाए। मूल आवश्यकता उन्हें बौद्धिक क्षमता संपन्न बनाने की है। इसके लिए उन्हें शिक्षा-दीक्षा के समान अवसर प्रदान किए बिना काम नहीं चलेगा। पुरुषों की तरह ही उन्हें उच्च शिक्षा की सुविधाएँ जुटाई जानी चाहिए। निरक्षर महिलाओं को भी साक्षर बनाने का व्यापक अभियान चलाया जाना चाहिए, ताकि मानसिक दासता के अभिशाप से मुक्त हुआ जा सके। कन्या शिक्षा में आज अपढ़ महिलाएँ ही अधिक बाधक हैं। साक्षरता अभियान द्वारा उनकी इस कमी को सुधारा जाना आवश्यक है। इस दशा में किसी भी तरह की आनाकानी अपने लिए, कुटुंब और समाज के लिए हानिकारक ही हो सकती है।

शिक्षा साक्षरता के अभाव में वह आगे बढ़ने की बात तो क्या सोच पाएगी, बल्कि सामान्य गृहस्थ संबंध भी नहीं निभा पाएगी। सास, श्वसुर, देवरानी, जेठानी तथा अपने और संयुक्त कुटुंब के दूसरे सदस्यों के साथ किस तरह व्यवहार बर्ताव किया जाए, यह भी नहीं समझ सकेगी। शिक्षा का उद्देश्य नौकरी करना और पैसा कमाना ही

नहीं, सर्वतोमुखी प्रगति के लिए बौद्धिक आधार तैयार करना होता है। इसलिए नारी, शिक्षा के क्षेत्र में पुरुष के समान ही अधिकारी है। उसे इस अधिकार से वंचित रखकर कतई आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

शिक्षित कन्या अपने माता-पिता का घर भी सँवारती है और अपनी ससुराल को भी सुसज्जित रखती है। शिक्षित नारी अपने बच्चों की व्यवस्था, गृहसज्जा तथा पति की सच्ची सहायिका के रूप में कहीं अधिक सुरुचिपूर्ण भाग ले सकती है। आवश्यकता पड़ने पर कठिन समय में वह स्वयं आगे बढ़कर गृहस्थी की आजीविका का सहारा भी हो सकती है। अशिक्षित नारी तो घर-बाहर सर्वत्र भार और अंधकार ही बन सकती है। यही हमारे समाज में हो रहा है। नारी को इस नरक-कुंड से उबारने का अर्थ अपने समाज को ही उबारना होगा।

संतान न होने पर संतान के लिए, बच्चों की बीमारी के समय अनिष्टकारी ग्रहों के शमन के लिए और टोने-टोटकों के लिए जो स्त्रियाँ, धूर्त ओझाओं, ज्योतिषियों और सयाने-दिवानों के चक्कर में पड़कर अपना धन, शील और संसार नष्ट करती हैं, उनका विश्लेषण कर कितनी ही बार देख लिया गया-मूल में नारी की शिक्षा का अभाव ही कारण बना। पढ़ी-लिखी स्त्री अपने बच्चों की बीमारी का किसी सुयोग्य चिकित्सक से इलाज कराएगी। वह किसी मंत्र फूँकने वाले के पास क्यों भटकेगी? भूत-बाधा और गृहयोग अशिक्षितों को परेशान कर सकते हैं, समझदार उनकी चाल में कैसे आएगा? टोने-टोटके पर वह विश्वास करेगा जिसकी बुद्धि को लकवा मार गया होगा। विवेकशील व्यक्ति परिस्थितियों को समझता और निराकरण ढूँढ़ता है। आज स्त्रियों पर अंधविश्वासी होने का कलंक लगाया जाता है, पर सच बात यह है कि उसके लिए दोषी वह मान्यता है, जिसमें उनकी शिक्षा का समर्थन नहीं किया जाता और उन्हें अपनी बौद्धिक क्षमताएँ बढ़ाने का अवसर प्रदान नहीं किया जाता।

नर और नारी मिलकर पूरा मानव जीवन बनता है। यद्यपि इनमें थोड़ी विषमता है पर वह पूरक है, इसलिए जरूरी है। साधारणतः

किसी जाति के संरक्षण में नारी की उपयोगिता और महत्ता अधिक है। पशुओं में मादा को ही संतान के प्रसव के साथ अपना और उसका रक्षण करना होता है। यदि मनुष्य में भी यही दशा होती तो मनुष्यों के सारे कुटुंब नारी प्रधान ही होते। एक जमाने में वे सभी नारी प्रधान थे, किंतु मनुष्य की समाज रचना इतनी विकसित हो गई है कि मानव जीवन के निर्माण और समुन्नति के कार्य में पुरुष को भी काफी हिस्सा मिलने लगा है। इसलिए सेवा की दृष्टि से पुरुष नारी के बराबर आ गया है। इसलिए मानव जीवन के लिए 'नर-नारी' समभाव एक सिद्धांत बन गया है।

नारी के समान पुरुष के ऊपर भी निर्माण और सेवा के बहुत से काम आ गए हैं। इसलिए पुरुष नारी के समान, परस्पर पूरक और बराबर है।

इधर कुछ सहस्राब्दियों से नर और नारी में एक तरह की विषमता पैदा हो गई है। नारी का सेवाक्षेत्र घर ही रह जाने से और पुरुष का सेवाक्षेत्र बाहर हो जाने से नई समाज रचना के अनुसार पुरुष के हाथ में बहुत से महत्त्वपूर्ण अधिकार आ गए हैं और उन अधिकारों का बड़े विशाल रूप में दुरुपयोग हुआ है। नारी मोक्ष नहीं पा सकती, वह विधवा होने पर भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती। वह पुरुष की बराबरी में उठ-बैठ नहीं सकती। उसको कोई आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। किसी तरह के ऊँचे पद उसे दिए नहीं जा सकते इत्यादि विषमताएँ जो कि बिलकुल अन्यायपूर्ण हैं हर घर में घर किए बैठी हैं। इन्हें हटाना मानव समाज की मानवता के लिए, अधिक से अधिक मनुष्यों के सुख के लिए जरूरी है। आखिर नारियाँ आधी दुनियाँ तो है हीं। अगर आधी दुनियाँ इस तरह दलित और पीड़ित रहे तो मनुष्य समाज को सुखी कैसे कह सकते हैं? इसलिए नर-नारी समभाव की सख्त जरूरत है। मतलब यह नहीं है कि कोई भी नारी किसी भी नर के समान है। सैकड़ों नर लाखों नारियों से महान होते हैं, हो सकते हैं और सैकड़ों नारियाँ लाखों नरों से महान होती हैं, या हो सकती हैं। नर-

नारी समभाव का अर्थ इतना ही है कि नर हो या नारी उसके गुणों और सेवाओं का उचित मूल्यांकन किया जाए और सिर्फ नारियाँ या नर होने के कारण किसी पद या अधिकार से किसी को वंचित न किया जाए। नर-नारी समभाव के व्यावहारिक रूप के लिए निम्नलिखित सूचनाएँ उपयोगी हैं-

(१) नर और नारी के साथ व्यवहार गुण, योग्यता और सेवा के अनुरूप होना चाहिए। नारी, नारी होने के कारण किसी अधिकार व गौरव से वंचित न रहे।

(२) संपत्ति के ऊपर नारी का भी अधिकार होना चाहिए। पति की आमदनी में उसका भी हिस्सा होना चाहिए। वह सिर्फ खाना, कपड़ा आदि पाने वाली नौकरानी ही न रहे।

(३) वर पक्ष बड़ा है और कन्या पक्ष छोटा है-यह दुर्भावना दिल से निकल जानी चाहिए। साला आदि शब्द गाली बन गए हैं, यह दुर्भाव जाना चाहिए।

(४) घूँघट, परदा आदि बुरे रिवाज बिलकुल दूर होने चाहिए। विनय की दृष्टि से तो उनका उपयोग होना ही नहीं चाहिए।

(५) एक नौकर है। वह मालिक के कपड़े धोने को तैयार नहीं है। इसमें उसे पुरुषत्व का अपमान मालूम होता है। यह पुरुषत्व-मर मिट जाना चाहिए।

(६) कोई पुरुष अगर किसी ऊँचे स्थान पर बैठा हो और नारियाँ जमीन पर हों तो इसमें नारियों का कोई अपमान न समझा जाएगा, पर अगर नारी किसी ऊँचे स्थान पर बैठी हो और पुरुष वर्ग जमीन पर बैठा हो तो इसमें पुरुष वर्ग का अपमान समझा जाएगा। यह लैंगिक विषमता है। यह न रहना चाहिए। हाँ, पुरुषों में कोई गुरुजन या विशेष आदरणीय व्यक्ति हो तो उसके सम्मान का विचार करना आवश्यक है। पर यह पुरुषत्व का सम्मान नहीं है बल्कि गुरुत्व आदि का सम्मान है जो कि नारियों के विषय में भी किया जाना चाहिए।

(७) सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक पदों पर स्त्रियों का भी होना आवश्यक है। साधारण नारी का स्थान घर भले ही रहे, पर नारी को सब जगह काम करने का अधिकार है। इस बात की निशानी के रूप में तो नारी को सभी तरह के पदों पर थोड़े-बहुत रूप में रहना चाहिए। सभा, पंचायत आदि में भी नारी की सदस्यता अनिवार्य है।

इसी प्रकार की और भी सूचनाएँ दी जा सकती हैं। सार इतना ही है कि नर और नारी मानव जीवन के समान अंग हैं। इनका काम एक दूसरे को सहयोग देना है न कि एक-दूसरे का शोषण करना। यह नारी समभाव मनुष्य की सभ्यता की बड़ी भारी कसौटी है।

स्त्रियों को इस विषय में पीछे न रहना चाहिए। उन्हें अबला नहीं सबला बनना चाहिए। दौड़ने का, पत्थर फेंकने का, लकड़ी आदि चलाने का अभ्यास उन्हें भी करना चाहिए तथा निर्भयता, साहस आदि की वृत्तियों को जगाना चाहिए। ताकत की दृष्टि से जो दीनता की भावना उनमें छोटी अवस्था से पैदा हो गई है, वह न पैदा होनी चाहिए। यदि पैदा हो गई हो तो विवेक के जरिए दूर करना चाहिए। पुरुष हो या नारी, सभी को बलवान बनने की सख्त जरूरत है।

जिस राष्ट्र या समाज के स्त्री और पुरुष बलवान होते हैं, वही अपना और जगत का कल्याण कर सकते हैं। आदमी धनी भी हो, पंडित भी हो लेकिन बलवान न हो तो वह जगत की पूर्ण सेवा नहीं कर सकता, न अपने गौरव और न्याय की रक्षा कर सकता है। हर व्यक्ति को, स्त्री या पुरुष को, हर कुटुंब को, हर समाज को शरीर और मन से बहादुर बनना चाहिए।

महात्मा गांधी के शब्दों में, "स्त्री, पुरुष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियाँ पुरुष से कहीं भी कम नहीं हैं। उसे पुरुष के हर एक काम में हाथ बँटाने का हक है और आजादी का उसे उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को। अपने क्षेत्र में उसकी सर्वोच्चता उसी प्रकार स्वीकार की जानी चाहिए, जिस प्रकार पुरुष की उसके क्षेत्र में।"

"मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में कानून की तरफ से स्त्री के लिए ऐसी कोई रुकावट न होनी चाहिए जो पुरुष के लिए नहीं है। मैं लड़कों और लड़कियों के साथ बिलकुल बराबरी के दरजे का बरताव चाहूँगा।"

"स्त्री और पुरुष का दरजा समान है, पर वे एक नहीं हैं। वे ऐसी अनुपम जोड़ी हैं, जिसमें प्रत्येक एक-दूसरे का पूरक है। वे एक दूसरे के लिए आश्रय रूप हैं-यहाँ तक कि एक के बिना दूसरे की हस्ती की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इन तथ्यों से यह जरूरी निष्कर्ष निकलता है कि जिस बात से दोनों में से एक का दरजा घटेगा उससे दोनों की बराबर बरबादी होगी।"

"स्त्री जाति के प्रति अन्यायपूर्ण भेदभाव युगधर्म के खिलाफ है। लड़के के जन्म पर खुशियाँ मनाने और लड़की के जन्म पर शोक करने का मुझे कोई कारण नहीं दीखता। दोनों ही भगवान की देन हैं। दोनों को जीवन का समान अधिकार है और संसार का प्रवाह जारी रखने के लिए दोनों की एक सी जरूरत है।"

"स्त्री को अबला कहना उसकी मानहानि करना है, यह पुरुष का स्त्री के प्रति अन्याय है। यदि बल का अर्थ पशुबल है तो बेशक स्त्री, पुरुष से कमजोर है, क्योंकि उसमें पशुता कम है। लेकिन अगर बल का अर्थ नैतिक बल है तो स्त्री, पुरुष से बेहद ऊँची है। क्या उसकी सहज बोध की शक्ति पुरुष से अधिक नहीं है? क्या उसकी त्याग शक्ति पुरुष से ज्यादा नहीं है? क्या उसकी सहिष्णुता और उसका साहस पुरुष को पीछे नहीं छोड़ देता? उसके बिना पुरुष की हस्ती ही संभव नहीं हो सकती थी। अगर अहिंसा हमारे जीवन का धर्म है तो भविष्य स्त्री के हाथों में है।"

"स्त्रियाँ अपने आप को पुरुषों की गुलाम या उनसे गिरी हुई क्यों मानें? विविध भाषाओं में स्त्रियों के लिए प्रचलित शब्दों और मुहावरों में उन्हें पुरुष का आधा अंग कहा गया है और उसी तर्क के अनुसार पुरुष, स्त्री का आधा अंग है। वे दो अलग-अलग हस्तियाँ

नहीं हैं, बल्कि एक ही हस्ती के दो हिस्से हैं। अँगरेजी भाषा ने तो एक कदम और आगे बढ़कर स्त्री को पुरुष का अधिक अच्छा अंग कहा है।''

''हिंदुस्तान में परदे की प्रथा बहुत पुरानी नहीं है और यह हिंदुओं के पतन-काल में चली है। जिस जमाने में गर्वीली द्रौपदी और निष्कलंक सीता मौजूद थीं, उस जमाने में परदा नहीं हो सकता था। गार्गी परदे में बैठकर शास्त्रार्थ नहीं कर सकती थी। हिंदुस्तान में परदा सब जगह आज भी नहीं है। दक्षिण भारत, गुजरात और पंजाब में इसे कोई जानता भी नहीं। किसानों में भी इसको कोई नहीं जानता और इन प्रांतों में और किसानों में स्त्रियों को जो बहुत कुछ आजादी मिली हुई है उससे कोई बिगाड़ होता नहीं सुना गया और न यही कहना उचित होगा कि दुनियाँ के दूसरे भागों में परदा न होने के कारण वहाँ के स्त्री-पुरुष यहाँ से कम सदाचारी हैं।''

''पत्नी पति की गुलाम नहीं, साथी है। वह उसकी अर्द्धांगिनी, सहकारी और मित्र है। पति के अधिकार और कर्त्तव्य दोनों में उसका बराबर हिस्सा है। इसलिए उनकी जिम्मेदारियाँ एक-दूसरे के प्रति और दुनियाँ के प्रति भी एक सी और पारस्परिक होना चाहिए।''

सीता महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जीवनयापन कर रही थीं, तब की बात है। एक दिन महर्षि के आश्रम में विश्वावारा नाम की ब्रह्मवादिनी तपस्विनी का पदार्पण हुआ। विश्वावारा अयोध्या का परिव्राजन कर लौटी थी सो आध्यात्मिक जिज्ञासाओं की अपेक्षा सीता की सहेलियों के मन में श्रीराम के वृत्तांत जानने का कुतूहल जाग उठा। वे सब विदुषी विश्वावारा के समीप गईं और पूछने लगीं-''**अथ स रामभद्रः किमाचारः?**'' अर्थात भद्रे ! अब रामचंद्र क्या करते हैं ?

''**तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रकान्तः**'' अर्थात हे आर्य पुत्रियो ! वे इन दिनों अश्वमेध यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं। विश्वावारा ने उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए उत्तर दिया। किंतु इस उत्तर से तो उनका कुतूहल और भी प्रखर हो उठा। वे पूछने लगीं-''**हंत !**

परिणीतमपि।'' ओह ! तो उन्होंने दूसरा विवाह भी कर लिया? क्योंकि यज्ञ तो बिना पत्नी के पूर्ण होता ही नहीं। आचार्या विश्वावारा उनका संदेह निवारण करते हुए बोलीं–''**शांत भू, नहि नहि**''– नहीं नहीं ऐसा नहीं। ''**का तहि यज्ञे सहधर्मचारिणी**'' तो फिर उनके यज्ञ में उनकी सहधर्मचारिणी कौन है? विश्वावारा ने तब बताया कि इस निमित्त सोने की सीता जी की प्रतिमा बनाई गई है।

इस आख्यान से यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों को न केवल अपने आध्यात्मिक विकास का पूर्ण अधिकार था, अपितु जिस आयोजन में पत्नी का–नारी का सहयोग नहीं होता था, वह अपूर्ण माना जाता था। जातीय वर्चस्व और संतति सर्वगुणसंपन्नता के जो मौलिक आधार रहे हैं, उनमें यह प्रमुख बात थी कि यहाँ की, इस देश की नारी आध्यात्मिक क्षमताओं में पुरुष से रत्ती भर कम न थी। ऐसा तभी संभव हुआ, जब उसे अपनी क्षमताओं के लिए पूर्ण अवसर दिए गए, यथेष्ट स्वायत्तता प्रदान की गई।

तात्त्विक दृष्टि से स्त्री–पुरुष में कोई भेद नहीं है। शारीरिक अवयवों में बहुत सामान्य अंतर के अतिरिक्त चर्म, रक्त, मांस, मज्जा, नाड़ियाँ आदि स्थूल धातुएँ तथा प्राण, वाक्, मन, तेजस आदि सूक्ष्म तत्त्व दोनों में ही एक समान हैं। सम्मोहन तंत्र में इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है–''**एक ज्योतिरभूद् द्वेधा राधा माधव नामकम्**'' अर्थात स्त्री व पुरुष नाम से विख्यात दोनों ही प्राणी एक ही तेज की दो किरणें हैं।

आध्यात्मिक विकास की कल्पना में इस 'प्राणज्योति' अथवा 'आत्मतत्त्व' के विकास की विधि व्यवस्था ही सन्निहित है। यदि पुरुषों को बार–बार इस बात की प्रेरणा दी जाती है कि वह अपनी चेष्टाएँ और कौशल मात्र नाशवान शारीरिक सुख और भौतिक समुन्नति में नियोजित न करें, अपितु अपनी पारलौकिक सत्ता को समझने–विभिन्न प्रकार के तप और योगाभ्यास द्वारा उसको विकसित करने की

भी चेष्टा करें तो यही बात, यही प्रेरणा समान रूप से नारी को भी दी जानी चाहिए। उसे अपने इस परमार्थ प्रयोजन की तैयारी में बाधा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। जो लोग धार्मिक मान्यताओं की दुहाई देकर नारी को धार्मिक प्रयोजन के लिए निषिद्ध बताते हैं, वे भूलते हैं कि भारतीय जीवन पद्धति के आदि व्याख्याकार महर्षि मनु ने क्रमशः ९/११ तथा ९/१०१ सूक्तों में जहाँ उन्हें संपत्ति खरच करने का, गृह व्यवस्था का अधिकार दिया है, वहाँ उन्हें मृत्युपर्यंत पुरुष के साथ साथ धार्मिक कार्यों में परस्पर समानता का भी अधिकार दिया है।

मनुष्य शरीर की रचना परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। उसे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, स्नेह-सहयोग, बुद्धि और आत्मा की जो क्षमताएँ उपलब्ध हैं, उनकी सार्थकता इसी में है कि वह संसार में गौरवपूर्ण जीवन जिए और जब इस देह का, इस संसार का परित्याग करे उससे पूर्व यह तैयारी कर ले जिससे मृत्यु के समय उसे किसी प्रकार का पश्चात्ताप न करना पड़े। पश्चात्ताप दोनों ही प्रकार से हो सकता है-(१) सांसारिक कामनाएँ पूर्ण न होने के कारण विषयों में इंद्रिय सुखों में अथवा भौतिक उपलब्धियों में मन अटका रह सकता है। (२) सारा जीवन पाप और प्रतारणा में बीत जाए और पारमार्थिक जीवन के विकास के लिए बिलकुल प्रथत्नशील न हुआ जाए? इन दोनों अवस्थाओं का सामना केवल पुरुष को ही नहीं करना पड़ता, स्त्रियों को भी करना पड़ता है। यदि पुरुष इन प्रयोजनों के लिए बंधन स्वीकार न करें तो नारी उसके लिए क्यों प्रतिबंधित की जाए। पुरुष उसे भोग्या और रमणी रूप में देखेगा तो वह न केवल अपना सर्वनाश करेगा, अपितु अपने साथ उस बेचारी नारी को भी ले डूबेगा। पत्नी को सखा, सहचर, मित्र के रूप में, सहधर्मिणी के रूप में ही देखा जाना चाहिए। ऐसा करने से उसकी बौद्धिक स्वाधीनता अक्षुण्ण बनी रहेगी और तभी वह अपना आत्मिक परिष्कार कर सकेगी।

प्रश्न मान्यता बदलने का है जिससे किसी भी महिला को उसके आत्म कल्याण के साधनों से रोका नहीं जाए। नारी में कोमलता, भावुकता, पवित्रता, संवेदनशीलता के गुण प्रकृतिदत्त हैं, यह पुरुष में कम मात्रा में पाए जाते हैं। अतएव उसके लिए किन्हीं बड़े और कष्टसाध्य साधन अनुष्ठान भी अभीष्ट नहीं, पर उस पर गृहस्थी का, प्रजनन का, अशिक्षा और अज्ञान का, बंधनों का इतना बोझ नहीं लादा जाना चाहिए, जिससे वह अपनी नैसर्गिक योग्यताएँ खो बैठे। यह स्थिति व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही घातक है।

संतति निर्माण और गृह व्यवस्था के अधिकांश उत्तरदायित्व नारी पर आते हैं। हर व्यक्ति यह आशा करता है कि उसकी संतान श्रेष्ठ और सद्गुणी हो, विनीत और मेधावी हो–यह सभी आध्यात्मिक संपदाएँ हैं। बच्चों में उनका तभी विकास संभव है, जब माँ स्वयं भी इन गुणों से परिपूर्ण हो। पिता एक बार प्रतिगामी हो तो भी आत्मिक प्रतिभा संपन्न माँ पुत्र को श्रेष्ठ बना सकती है, पर दुर्गुणी और अज्ञानग्रस्त माँ से, कैसा भी तपस्वी पिता हो, बच्चे को आत्महीन होने से नहीं बचा सकता। हिरण्यकशिपु के घर प्रह्लाद जैसा भक्त होना नारी की उनकी धर्मप्राण माता कयाधु की योग्यता का प्रमाण है। महाराज ऋतध्वज विलासी थे, पर उनकी धर्मपत्नी मदालसा ने अपना आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण अपने बच्चों को जब जैसा चाहा वैसा बनाया? हनुमान अंजनी के पुत्र थे। उन्हें इतना शक्तिशाली और भक्त बनाने का श्रेय उनकी माँ का ही है। यह संपूर्ण उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि भावी पीढ़ी के विकास के लिए माता का–नारी का न केवल शिक्षित होना आवश्यक है, अपितु उसका आध्यात्मिक क्षमताओं से परिपूर्ण होना भी अनिवार्य है। इसके लिए उसे समान सुविधाएँ और अवसर उपलब्ध होने चाहिए। उन्हें धार्मिक क्रिया-कलापों से प्रतिबंधित करना अपनी भावी संतान के साथ अन्याय और उसके जातीय वर्चस्व को ही प्रतिबंधित करना है।

❐

भारतीय संस्कृति में नारी की गरिमा

यह सही है कि मध्य युग में अपने देश में पतनशील प्रवृत्तियों के विकासक्रम में सामाजिक संरचना हर प्रकार से दूषित होती गई और सुविधा प्राप्त शक्तिशाली वर्ग ने अपनी अंध मान्यताएँ शेष वर्ग पर थोपने के लिए हर संभव हथकंडे अपनाएँ। एक ओर जहाँ धन-संपदा थोड़े से लोगों के हाथों में केंद्रित कर शेष को उनका मुँह जोहते रहने वाला बना डाला गया, वहीं धर्मशास्त्रों में भी पुरोहितों द्वारा मनचाहे अंश जुड़वाए गए।

लेकिन प्राचीन ग्रंथों में नारी के लिए प्रयुक्त सभी शब्दों की व्युत्पत्ति पर ही यदि विचार करें तो भी स्पष्ट हो जाएगा कि मध्यकालीन अंधकार युग से पहले अपने यहाँ महिलाओं के प्रति समाजशास्त्रियों का मनोभाव क्या था ?

सबसे पहले 'महिला' शब्द को ही लें-मह + इलच् + आ = महिला। मह का अर्थ श्रेष्ठ या पूजा है। पूज्य, श्रेष्ठ जो है, वही महिला।

लौकिक संस्कृत में आदर देने के लिए स्त्रियों के लिए 'मान्या' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह वस्तुतः वैदिक संस्कृत के 'मेना' शब्द से बना है। ऋग्वेद में 'मेना' शब्द नारी अर्थ का वाचक है। यास्क कृत निरुक्त (३/२१/२) में इसकी व्युत्पत्ति दी गई है-'**मानयन्ति एनाः (पुरुषाः)**' अर्थात पुरुष इनका आदर करते हैं, इसलिए इन्हें मेना कहते हैं।

इसी प्रकार स्त्री अर्थ का बोधक 'ग्ना' शब्द भी ऋग्वेद में आया है, जो देव-पत्नियों के लिए प्रयुक्त है। किंतु ब्राह्मण-ग्रंथों में यही शब्द 'मानवी' के लिए प्रयुक्त है। जिसकी यास्क ने व्याख्या की है-'**ग्ना गच्छन्ति एनाः**'। पुरुष ही उनके पास जाते हैं, सम्मानपूर्वक बात करते हैं, उसे पुरुष से अनुनय की आवश्यकता नहीं पड़ती।

स्त्री शब्द तो सर्वाधिक प्रचलित है। महर्षि पतंजलि के अनुसार, '**स्त्यास्यति अस्यां गर्भ इति स्त्री।**'-उसके भीतर गर्भ की स्थिति होने से उसे स्त्री कहा गया है।

जहाँ तक 'नारी' शब्द का प्रश्न है, वह नर की ही तरह 'नृ' से बना है और इसका सामान्य अर्थ है-क्रियाशील रहने वाला 'नर'

हुआ और जो क्रियाशील रहने के कारण ही 'नारी' हुई। जो गति करे, हल-चल करे, वह नर एवं नारी। किंतु ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग नेतृत्व करने, दान देने और वीरता करने के अर्थ में किया गया है, उस दृष्टि से नर और नारी में यही तीनों विशेषताएँ होनी चाहिए।

'सुंदरी' शब्द ऋग्वेद में 'सूनरी' का विकसित रूप है। सूनरी ऊषा को कहा गया है अर्थात शोभावाली।

'ललना' और 'मानिनी' शब्द तो स्पष्ट ही हैं। जिसकी इच्छा-शक्ति प्रबल हो वह ललना और जिसमें स्वाभिमान हो, वह मानिनी।

ये तो हुए शब्द। अब यदि प्राचीन ग्रंथों में नारी के प्रति व्यक्त उद्‌गार देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि नारी के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान का भाव उनमें है और उसे सदैव एक स्वतंत्र चेतन सत्ता के रूप में ही स्मरण किया गया है, मध्ययुग की तरह किसी पदार्थवत नहीं।

'जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं' ऐसा कहने वाली मनुस्मृति में यह भी कहा गया है कि स्त्री की प्रसन्नता से ही घर-भर में उल्लास मुखरित होता है। यदि वह विषण्ण, उदास रही तो चतुर्दिक अवसाद घिर आता है। पद्मपुराण में कहा गया है -

नास्ति भार्या समो तीर्थं, नास्ति भार्या समं सुखम्।
नास्ति भार्या समो पुण्यं, तारणाय, हिताय च ॥

पत्नी के समान हितकारी और दुःखों से उबारने वाला न तो कोई पुण्य है, न तीर्थ है और न ही सुख।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है-'**गृहाः वै पत्न्ये प्रतिष्ठाः**' अर्थात पत्नी से ही घर की प्रतिष्ठा है।

वृहत्संहिता में कहा गया है-'**पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री समुद्धरेत्**' अर्थात सती स्त्री अपने पति का ही नहीं, अपने उत्कृष्ट आचरण की प्रत्यक्ष प्रेरणा से सहस्रों पुरुषों का उद्धार यानी श्रेष्ठता की दिशा का मार्गदर्शन करती है। सप्तशती चंडी और देवी भागवत में कहा गया है-

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु॥

समस्त स्त्रियाँ और समस्त विद्याएँ देवी रूप ही हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद् में उपाख्यान है कि जब परमसत्ता को अकेले अच्छा नहीं लगा तो उसने अपने को दो भागों में विभक्त किया। यही दो भाग पति-पत्नी बने-

स इममेवात्मानं द्विधा पातयत्ततः। पतिश्च पत्नी चाभवताम्॥

व्यास संहिता (२/१४) में कहा है कि पत्नी के प्राप्त होने के पूर्व तक पुरुष अधूरा है-'**यावन्न विन्दत्ते जायां, तावदर्धो भवेत् पुमान्।**

तंत्रशास्त्र में अर्द्धनारीश्वर का ध्यान-विधान है। मनुस्मृति में तो यहाँ तक कहा है कि स्त्री और श्री में कोई भेद नहीं है-'**स्त्रियः श्रियश्च लोकेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन्।**' *-मनुस्मृति ९/२६*

वृहदारण्यक उपनिषद् में पंडिता पुत्री की कामना की गई है और उसकी विधि कथित है-'**अथ य इच्छेद् दुहिता मे पंडिता जायेत् सर्वमायुरितात्।** *-वृहदाण्य को पनिषद् ६/४/१७*

श्रीमद्भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु की धर्मपत्नी ने पुत्रेष्टि यज्ञ के समय कन्या उत्पन्न होने की याचना की-

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नीहोतारं समयाचत्।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता॥

-श्रीमद्भागवत ९/१/१४

इसी यज्ञ से इला की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी के प्रति अपने प्राचीन पूर्वजों के मन में सम्मान और समता की भावना थी। उसके प्रति हीन-भाव रखने का कोई प्रश्न ही नहीं। यों तो व्यावहारिक यथार्थ यह है कि जिसके पास सामाजिक प्रभुता होती है, उसी का सब सम्मान करते हैं। इसलिए नारी की उपेक्षित स्थिति के लिए शास्त्रों आदि को दोष देने और अर्थहीन विवाद खड़े करते रहने तथा ठोस कार्य कुछ न करने के स्थान पर आवश्यकता इस बात की है कि नारी को पुनः सक्षम-समर्थ बनाया जाए।

पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित पाश्चात्य संस्कृति के अंधभक्त भारतीय जीवन दर्शन और संस्कृति पर प्रायः यह आरोप लगाते हैं कि यहाँ नारियों की सदैव उपेक्षा की गई और उन्हें दूसरे दरजे का प्राणी समझा गया। इसी कारण आज के समय में भारतीय नारी विदेशों की तुलना में अधिक पिछड़ी और हीन स्थिति में है। भारतीय नारी की

वर्तमान अवस्था दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक बुरी दशा में है। यह बात तो ठीक है, पर इसके लिए भारतीय संस्कृति की आधारभूत मान्यताओं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि उसमें तो हर स्थान पर नारी की गरिमा को प्रतिष्ठापित किया गया है तथा उसे पुरुष से कम नहीं बल्कि ऊँचा ही माना गया है।

प्रश्न उठता है कि यदि यह बात सही है तो फिर भारतीय नारी दीन-हीन दुर्दशाग्रस्त स्थिति में क्यों है? इसके लिए यदि हमारे जीवन मूल्य जिम्मेदार नहीं हैं तो क्या कारण है कि भारतीय नारी को घर की चहारदीवारी में ही अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़ता है और क्यों परमुखापेक्षी रहना पड़ता है? यह स्थिति भारतीय संस्कृति के और भारतीय जीवन मूल्यों के कारण नहीं बनी है, बल्कि देश, काल और समाज में आए परिवर्तनों के कारण, पुरुष समाज के उद्धत अहंकार के कारण ही निर्मित हुई है।

भारतीय मनीषियों ने तो नर और नारी में कभी कहीं कोई भेद नहीं किया है। उन्होंने तो नर और नारी दोनों में ही एक ही तत्त्व का अस्तित्व, एक ही चेतना की छाया देखी है तथा माना और प्रतिपादित किया है कि सभी प्राणियों में आत्मतत्त्व ही प्रधान है तथा आत्मतत्त्व का कोई लिंग, कोई वर्ण नहीं होता। धर्मग्रंथों में जगह-जगह सर्वव्यापी आत्मचेतना की प्रतिच्छाया के दर्शन होते हैं तथा यह व्यक्त होता है कि वह सभी जीवों में समान रूप से व्याप्त है। महर्षियों ने गाया है –

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वभणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वभणि भूतानि शरीरं यः सर्वभणि भूतान्यन्तरो यभयत्येष त आत्मान्तर्याभ्यभृतः॥ —*वृहदारण्यकोपनिषद् ३/७/१५*

जो सब भूतों में रहता हुआ भी सबसे पृथक है, जिसे सारे भूत नहीं जानते, सारे भूत जिसका शरीर हैं जो सब भूतों में स्थित होकर उनका नियंत्रण करता है, वह तेरी आत्मा है। वह सबमें व्याप्त है और किसी में भी विशेष-अविशेष नहीं है।

धर्मग्रंथों में प्रायः सभी स्थानों पर इसी तरह के प्रतिपादन भरे पड़े हैं। फिर किस आधार पर कहा जा सकता है कि हमारी संस्कृति में तात्त्विक दृष्टि से ही नर और नारी में भेद किया गया है।

यह भी मान लिया जाए कि उपर्युक्त प्रतिपादन मात्र सैद्धांतिक या तात्त्विक आधार पर ही किया गया, लेकिन उसे व्यवहार में उतारने के लिए कोई कठिनाई समझी गई, जिससे नर और नारी में व्यावहारिक अंतर रखा गया। यह मानने का भी कोई आधार नहीं है क्योंकि शास्त्रों ने कदम-कदम पर नर और नारी को एक ही सत्ता के दो अंग, एक ही गाड़ी के दो पहिये और एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह परस्पर अविच्छिन्न, अभिन्न तथा अद्वैत माना है।

भारतीय मनीषियों ने नर और नारी के अभेद, समानता का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए बताया है कि सृष्टि नियंता ने सृष्टि-संचालन की सुविधा के लिए ही अपने आप को पृथक-पृथक विशेषताओं के साथ दो अलग इकाइयों में विभक्त किया है। उपनिषद्कार ने कहा है-

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तात्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयि च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति। *—प्रश्नोपनिषद् १/४*

जब प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न करने की कामना की तो उसने सबसे पहले युग्म बनाया। एक का नाम रयि था और दूसरे का प्राण। बस इसी रयि और प्राण से ही सारा संसार निर्मित हुआ है। और भी कहा है-

आदित्यो ह व प्राणो रयिरेव चन्द्रमा। *—प्रश्नोपनिषद १/५*

आदित्य प्राण स्वरूप है और रयि चंद्रमा स्वरूप।

भगवान मनु का भी यह कथन है-

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराज मसृजत्प्रभुः॥

-मनुस्मृति १/२२

प्रभु ने अपनी देह अर्थात व्यक्त स्वरूप के दो भाग किए। उनमें एक भाग पुरुष हुआ और दूसरा नारी। उस नारी भाग में से विराट जगत का उत्पादन किया।

सृष्टि-संचालन और मनुष्य के निर्माण में इस प्रकार नारी की भूमिका न केवल समान मानी गई, वरन उसकी भूमिका को शास्त्रकार ने विशिष्ट भी कहा है। परिवार में तो उसका अग्रणी स्थान है ही, संतान से संबंधित संरक्षकों, अभिभावकों में उसे सर्वोपरि स्थान दिया गया है। मनुस्मृति में कहा है-

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्र तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

उपाध्याय से आचार्य दस गुना श्रेष्ठ है और आचार्य से सौ गुना पिता। परंतु माता, पिता से भी सहस्त्र गुनी श्रेष्ठ, वन्द्य और पूज्य है।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि माता संतान के लिए सबसे अच्छी और सर्वाधिक हितैषी संरक्षिका है। यह तथ्य तो सर्वविदित ही है कि संतान के व्यक्तित्व पर माता का ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। वह संतान को मनचाही दिशा दे सकती है तथा उसे आदर्श साँचे में ढाल कर समाज के लिए महत योगदान दे सकती है। इस तथ्य को प्रतिपादित करने वाले कितने ही उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं, जब माताओं ने अपनी संतानों को समर्थ व्यक्तित्व प्रदान किया तथा उनके माध्यम से समाज और राष्ट्र को उनकी महती सेवा करने वाले व्यक्तित्व दिए। सुभद्रा, कौशल्या, देवकी से लेकर गांधी और विनोबा की माताओं तक इस आदर्श की एक सुदीर्घ परंपरा है।

भारतीय मनीषियों की दृष्टि से यह तथ्य जरा भी ओझल नहीं रहा है। उसके महान उत्तरदायित्वों को लेकर तो यहाँ तक कह दिया है कि वह केवल माँ ही नहीं है बल्कि शक्तिस्वरूपा है।

नारी शक्तिस्वरूपा है और उसका प्रधान कार्यक्षेत्र परिवार है। व्यक्ति और समाज के संबंधों में परिवार का अहम् स्थान है। व्यक्ति को जो संस्कार मिलते हैं, उसके विकास हेतु जो पोषण मिलता है उसका स्रोत परिवार ही है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए उनकी प्रतिभा और योग्यता का सिंचन, प्रतिभाओं का बीजारोपण परिवार में ही हुआ।

समाज भी परिवार पर ही आश्रित है। यदि परिवार न हुए होते तो शायद ही समाज बसाने की आवश्यकता पड़ती। यदि समाज नहीं होता तो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सघन सहयोग के आधार भी नहीं बनते। ऐसी स्थिति में समाज ने आज तक जो प्रगति की है सभ्यता और संस्कृति का जो विकास हुआ है, वह शायद ही संभव हुआ होता। कहने का आशय यह कि परिवार समाज संस्था की मूल इकाई है और शास्त्रकार ने उसका भी आधार नारी को ही बताया है। कहा गया है –

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।

घर-घर नहीं है। वह तो मिट्टी है, जिस कारण गृह की प्रतिष्ठा है वह गृहिणी ही घर है। उसी से घर का अस्तित्व है।

इसलिए ऋषि-महर्षियों ने परिवार के सभी व्यक्तियों को निर्देश दिया है कि वे नारी का सम्मान तथा आदर करें। गृहिणी का निरादर तथा अवमानना करने की भर्त्सना भी की गई है और उसके दुष्परिणाम इस प्रकार बताए गए हैं-

जामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः।
तानि कृत्यादतानीप विनश्यन्ति समन्ततः॥
तस्मादेना सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैनित्यं सत्कारेषुत्सवेषु च॥

-मनुस्मृति ३/५८, ५९

अपमानित होकर या उत्पीड़ित किए जाने पर स्त्रियाँ जिन घरों को शाप देती हैं, वे घर कृत्या अभिचार अर्थात कर्मों द्वारा किए गए तांत्रिक प्रयोगों से नष्ट हुए के समान बिलकुल ही उन्मूलित हो जाते हैं। इसलिए पर्व, त्योहारों और उत्सवों के अतिरिक्त सामान्य दिनों में भी स्त्री को हर प्रकार से संतुष्ट रखना चाहिए।

गृह-व्यवस्था का सूत्र-संचालन जिन हाथों में केंद्रित है, उसका संतुलन बिगड़ जाने पर ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं है। इसके साथ ही शास्त्रकार ने नारी के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का विवेचन भी इस प्रकार किया है-

सदा प्रछष्टया भावंय गृह कार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतो पस्करया व्यये चामुक्त हस्तया॥

-मनुस्मृति ५/१५०

स्त्री को चाहिए कि सदा प्रसन्नमुख रहे, गृह कार्यों को दक्षतापूर्वक निबटाए तथा परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुसंस्कारी बनाने के लिए यत्न करे। गृह-संपदा का, परिवार की आर्थिक स्थिति का जहाँ अनावश्यक अपव्यय होता हो उसे दृढ़तापूर्वक रोके।

इसके साथ ही नारी के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों में वे सभी तत्त्व समाविष्ट हो जाते हैं, जिनका संबंध छोटे-छोटे विषयों से भी है और इन सभी विषयों से संबंधित जिम्मेदारियाँ निभाने का दायित्व नारी पर ही रहता है। यह दायित्व निभा लेना कोई आसान कार्य नहीं।

पुरुष के जिम्मे केवल उपार्जन और पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए साधन भर जुटा देने की जिम्मेदारी है जबकि गृहिणी को किस वस्तु का किस प्रकार उपयोग किया जाए, यह देखने के साथ-साथ परिवार के सदस्यों में संस्कारशीलता तथा उनके व्यक्तित्व निर्माण संबंधी आवश्यकताओं पर भी समुचित ध्यान देना पड़ता है। इसके लिए न केवल अपनी सामर्थ्य का संपूर्ण उपयोग करना आवश्यक है, अपितु परिवार के अन्यान्य सदस्यों का स्नेह, श्रद्धा और सम्मान भरा सहयोग भी चाहिए।

शास्त्रकारों ने गृहिणी के साथ कदम-कदम पर सहयोग और सम्मान करने का निर्देश दिया है तथा उसी आधार पर परिवार में सुख-शांति व सुव्यवस्था की स्थापना को संभव बताया है-

यदि कुलोन्नयने सरसं मनो, यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
यदि निजत्वमभीप्सितनेकदा, कुरु सतां श्रुतशीलवतीं तदा॥

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे कुल की उन्नति हो। यदि तुम अपना और अपनी संतान का कल्याण करना चाहते हो तो अपनी कन्या को विद्या, धर्म और शील से युक्त करो। मनुस्मृति में कहा गया है -

पितृभि भ्रातृ भिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
तत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फला क्रियाः॥

-मनुस्मृति ३/५५, ५६

पिता, भाई, पति और देवर जो भी कोई परिवार में हों यदि वे अपना कल्याण चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे स्त्रियों का सम्मान करें और उन्हें प्रसन्न रखें। जहाँ स्त्रियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता, वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

इन सब उदाहरणों के आधार पर भारतीय संस्कृति में नारी के स्थान को आसानी से समझा जा सकता है, लेकिन इन आधारों पर आधारित मान्यताएँ वर्तमान समाज में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होतीं। इस स्थिति को अविलंब बदला जाना चाहिए।

नारी ब्रह्मवर्चस की समान अधिकारिणी

भारतीय संस्कृति पग-पग पर नारी जाति की वरिष्ठता और तेजस्विता स्वीकार करती है। हमारी आचार संहिता में जहाँ उसे अपनी गरिमा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए बार-बार सावधान किया गया है, वहाँ पुरुषों पर भी समान रूप से यह उत्तरदायित्व डाला गया है कि वे स्वयं भी पवित्रता का आचरण बनाए रखें। पुरुष जाति का पतन ही नारी को गर्त में धकेलता है अतएव उनकी अपेक्षाकृत जिम्मेदारी अधिक है।

तेजश्च सर्व देवानाँ मुनीनाँ च सतीषु च।
वृथिव्याँ यानि तीर्थानि सति परिषु तान्मपि॥

—वसिष्ठ स्मृति

सती-साध्वी नारी में समस्त देवताओं का तेज रहता है। उसके चरणों में समस्त तीर्थ मस्तक झुकाते हैं।

महाभारतकाल में सेना में सैनिकों की तथा शासन में पदाधिकारियों की नियुक्ति करते समय उनका एकपत्नीव्रत पालन करना आवश्यक माना जाता था। नियुक्ति करने वाला अधिकारी, शासन में प्रवेश पाने वालों से कहता है-

एक पत्नीव्रतं तात यदि ते दि नेऽनघ।
ततस्त्वां धारयिस्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
न शौर्यं न कुलीनत्वं न च क्वपि पराक्रमः।
स्वदार चित्त वीरं विष्णुभक्ति समान्वितम्॥

-महाभारत

एकपत्नीव्रत का पालन करने वाला निष्पाप, आस्तिक व्यक्ति ही यहाँ प्रवेश पा सकेगा। मात्र वीरता या उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण किसी की नियुक्ति न हो सकेगी।

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे चपत्न्यर्थं जानकी कांचनी भवत्॥

-वाल्मीकि उत्तर. स. ९८

सीता के पश्चात राम ने दूसरी पत्नी स्वीकार नहीं की। प्रत्येक यज्ञ में पत्नी के स्थान पर सोने की सीता रखी जाती थी।

रामायण में पत्नीव्रत धर्म की महत्ता के कितने ही प्रसंग आते हैं। यथा–

मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी।
जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

× × ×

जननी राम जानाहिं पर नारी।

× × ×

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपन्थ पगु धरइँ न काऊ॥

पत्नी का परित्याग करने वाले उसे त्रास देने वाले भारतीय धर्मानुसार निंदित ठहराए गए हैं, उनकी भर्त्सना की गई है और दंडनीय बताया गया है–

यः स्वनारी परित्यज्य निर्दोषाँ कुलसम्भवाम्।
परदाररतो ही स्यादन्या वा कुरुते स्त्रीयाम्।।
सोग्य जन्मनि देवेशि स्त्री भूत्वा विधवा भवेत्।

–स्कंदपुराण

जो निर्दोष कुलांगना धर्मपत्नी का त्याग करके परस्त्री में आसक्त होता है, वह भी दूसरे जन्म में स्त्री योनि में जन्म लेकर विधवा होता है।

अदृष्टा पतिताँ भार्या यौवने यः परित्यजेत्।
स जीवनान्ते स्त्रीत्वं च बन्ध्यात्वँ च' समाप्नुयात्॥

–दक्षस्मृति

जो पुरुष अपनी सुशीला स्त्री को छोड़ देता है, वह मृत्यु के पश्चात बंध्या स्त्री होता है।

छिन्नशिरः शिरस्तस्य द्वेषं पश्मेद्भिदा तपेत्।
प्रार्थनामपि कुर्वाणो न लभेदन्नमुष्टिकाम्॥
नारी त्रैलोक्य जननी नारी त्रैलोक्य रूपिणी।
अहं हि जगताँ धात्री जननी जन्म कारणात्॥

–शक्तिसंगम तंत्र

जो नारी से द्वेष करते हैं, उसे अपमानित करते हैं उनका सिर कट जाता है, प्रार्थना करने पर भी उसको एक मुट्ठी अन्न नहीं मिलता, क्योंकि नारी ही तीनों लोकों की जननी है, वह त्रलोक्यरूपिणी है। वही समस्त जगत की जननी, धात्री और उत्पन्न करने वाली है।

मध्यकालीन प्रतिगामिता के प्रतीक ऐसे अभिवचन भी जहाँ-तहाँ धर्मशास्त्रों में ठूँसे हुए मिलते हैं, जिनमें स्त्रियों और शूद्रों को वेदाध्ययन का निषेध किया गया है। इसमें पुरुषों और कुलीनों की श्रेष्ठता और स्त्रियों तथा शूद्रों की निकृष्टता सिद्ध करने का भाव रहा होगा। गायत्री मंत्र भी वेद मंत्र है। इसलिए जब वेदाधिकार छिना तो गायत्री मंत्र की उपासना करने का भी उनके लिए निषेध हो गया। उन दिनों उस प्रकार के निषेध जिन लोगों ने चलाए वे भूल गए कि वेद मंत्रों की द्रष्टा एवं स्रष्टा जब स्वयं महिलाएँ रही हैं तो फिर उन्हीं के लिए उनका निषेध कैसे हो सकेगा। यज्ञोपवीत तो यज्ञ और गायत्री का सम्मिश्रित प्रतीक है। उसका धारण करना पुरुषों और स्त्रियों के लिए समान कर्त्तव्य है। इसे प्रमाणित करने वाले अनेकों शास्त्रवचन उपलब्ध होते हैं-

शुद्धाः पूतायोषितो यज्ञिया इमाः।

-ऋग्वेद ६/१२२/५

ये शुद्ध और पवित्र स्त्रियाँ यज्ञ की अधिकारिणी हैं।

यादम्पति समनसा सुनुतआ च धावतः।
देवानित्यया शिरा॥

-ऋग्वेद ८/३१/५

स्त्री-पुरुष को इकट्ठे प्रसन्नतापूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिए।

भविष्य पुराण, उत्तर. अ. ६९ के ८२, ८३, ८४, ८५ श्लोकों में गोदान विधान का वर्णन है। उसमें उसके संकल्प में गौ स्तुति के वेद मंत्र का चारों वर्णों द्वारा समान रूप से प्रयोग करने का विधान है।

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणाँ स्त्री जनेश्वर। यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्ध पुष्पा जलाक्षतेः कुसुमैर्थत्सकंचापि मंत्रेणानेन पाण्डव॥

ॐ माता रुद्रणां दुहिता ..... ।

हे पाण्डव! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रियाँ गौ की पूजा, गंध, पुष्प जल, अक्षत, कुंकुम आदि से करें और '**ॐ माता रुद्राणां त**' इस वेद मंत्र से गौ की अभ्यर्थना करें।

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥

–मनुस्मृति २/६६

स्त्रियों के ये संपूर्ण संस्कार जो ऊपर वर्णन किए हैं बिना विचार ही कर देने चाहिए। यथाकाल यथाक्रम शरीर के संस्कार के लिए अवश्य कर देने चाहिए।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में राजा कुशध्वज की पत्नी मालावती के उदर से उत्पन्न हुई वेदवती नामक कन्या का वर्णन है जो बचपन से ही वेदोच्चारण करने में प्रवीण थी।

वेदध्वनिं सा चकार जात मात्रेण कन्यका।
तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः॥
सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्च चत्वार एव च।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता॥

–ब्रह्मवैवर्त. प्रकृति. अ. १४

वह कन्या पैदा होते ही वेद की ध्वनि करने लगी। इस कारण से वे बुद्धिमान लोग उसको वेदवती कहने लगे।

निश्चय से चारों वेद मूर्तिमान होकर सदा उसकी जबान के अग्र भाग में रहते थे। इसलिए उसका नाम वेदवती था।

ततः संज्ञाय तुरगंग विधिवद्याजकास्तदा।
उपसंवेशयनराजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम्॥
कलाभिस्तिसृभीराजन् यथाविधि मनस्विनीम्॥

–महा. अश्वमे. आ. ५९

मनस्वी द्रोपदी ने विधिपूर्वक याक्षिकों की सहायता से यज्ञ कर्म पूरा किया।

नारी की आज की दुर्दशाग्रस्त स्थिति को सनातन और प्रारंभ से ही इसी प्रकार की मानने तथा उसके पक्ष में तरह–तरह के तर्क देने वाले लोग अपनी अज्ञानता के ही कारण ऐसा कर पाते हैं। शास्त्र और धर्म, दोनों की दुहाई देकर नारी की बाँधकर रखने की आवश्यकता

प्रतिपादित करने वाले ऐसे लोगों को शास्त्र और धर्म की जानकारी वस्तुतः होती नहीं। मध्य युग में अवश्य ऐसे विधि-निषेधों का जाल-जंजाल रच गया कि स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं, वे गायत्री-मंत्र का जप न करें आदि। इनके पीछे सामाजिक कुव्यवस्था और समाज में एक सीमित वर्ग की अन्यायमूलक सर्वोपरिता ही कारण है। उन्नत समाजों में प्रगति एवं विकास की अवधि में ऐसा नहीं होता।

यदि वैदिक साहित्य तथा प्राचीन वाङ्मय का अध्ययन-अवलोकन किया जाए तो इस मध्ययुगीन प्रतिपादनों के विपरीत ही व्यवस्था दृष्टिगत होगी। वहाँ पग-पग पर ज्ञानदीप्त, तेजस्विनी, सहकर्मिणी नारी के प्रमाण प्राप्त होंगे, जो सामाजिक जीवन में उसकी श्रेष्ठ स्थिति तथा बौद्धिक दृष्टि से उसकी उच्चतम प्रगति के द्योतक हैं।

कात्यायनी, मैत्रेयी, गार्गी, मदालसा, वाचकनवी जैसी ब्रह्मवादिनी नारियों के होने के प्रमाण से यह तो स्पष्ट होता ही है कि सर्वश्रेष्ठ विद्या के क्षेत्र में भी तत्कालीन नारियाँ अग्रणी थीं और उन्हें नारियों के बीच अपवाद नहीं, आदर्श माना जाता था। शास्त्रकारों का आदेश होता था-

कात्यायनी च मैत्रेयी, गार्गी, वाचक्वनी तथा।
एवमाह्य विदुर्ब्रह्म, तस्मात् स्त्री स्त्रीब्रह्मविद् भवेत्॥

जैसे कात्यायनी, मैत्रेयी, गार्गी, वाचकनवी आदि ब्रह्मवादिनी थीं, उसी प्रकार प्रत्येक स्त्री को ब्रह्मविद होना चाहिए।

यम स्मृति में कहा गया है-

यथाधिकारः श्रौतेषु योषितां कर्मसुश्रुतः।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्माणि ब्रह्मवादिताम्॥

जिस प्रकार श्रुति प्रतिपादित कर्म में स्त्रियों का अधिकार है, वैसे ही ब्रह्मविद्या की प्राप्ति का भी उन्हें अधिकार है।

वाल्मीकि रामायण को विश्व का आदि महाकाव्य कहा जाता है। उसमें भी ऐसे विवरण हैं, जिनमें कि स्त्रियों द्वारा वेदमंत्रों का उच्चारण करने, हवन-यज्ञ, संध्योपासना, अग्निहोत्र आदि करने का उल्लेख है। यथा-

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मंत्रविद् विजयैषिणी।

तब मंत्रों की ज्ञाता (तारा) ने अपने पति (बालि) की विजय के लिए स्वस्तिवाचक मंत्रों का पाठ किया।

सा क्षेम वसना, हृष्टा, नित्यं व्रतपरायणाः।
अग्नि जुहोतिस्य तदा मंत्रविित्कृत मङ्गला॥

—वाल्मीकि रामायण २/२०/१५

वेद मंत्रों की ज्ञाता, व्रतपरायणा, सुवेशी, प्रसन्न कौशल्या मंगलपूर्वक अग्निहोत्र कर रही थी।

कैकेयी के लिए भी 'मंत्रज्ञा' शब्द का प्रयोग वाल्मीकि रामायण में है–'**तदा सुमन्त्रं मंत्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच।**' अर्थात तब मंत्रता कैकेयी ने सुमंत्र से कहा–सीताजी द्वारा हवन किए जाने का वर्णन भी है –

सन्ध्याकाले मनः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदी चेमां शुभ जलाँ सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥

—वाल्मीकि रामायण ५/१५/४८

इस शुभ जल वाली नदी के तट पर सायंकाल पवित्र मन वाली जानकी निश्चित ही आएँगी।

एक अन्य स्थल पर कहा गया है–'**वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागतम्।**' यानी शोक संतप्त वैदेही ने तब हवन किया।

'यमस्मृति' में स्त्रियों के लिए प्राचीनकाल में मौंजीबंधन, वेदाध्ययन तथा गायत्री उपासना के प्रावधान की बात कही गई है–

पुराकल्पे तु नारीणां मोञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां, सावित्री वाचनं तथा॥

'वसिष्ठ स्मृति' में भी स्त्रियों द्वारा गायत्री मंत्र जपे जाने का विधान किया गया है।

प्राचीन आर्ष साहित्य को देखने पर ऐसा ज्ञात होता है कि जब अपना समाज उन्नत श्रेष्ठ स्थिति में था, तब तो नारी को पूर्णतः समान स्तर एवं अवसर प्राप्त था। कालांतर में सामाजिक व्यवस्था में विकृति तथा पक्षपात एकांगिता की स्थितियाँ उत्पन्न होती गईं, तब नारी पर भी प्रतिबंध लगने लगे। साथ ही समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा ऐसे अन्यायपूर्ण प्रतिबंधों का खंडन भी होने लगा। इस अवधि में नारी के अधिकारों

का उल्लेख धर्मशास्त्रों में मिलता है, जिसका अर्थ है कि इन अधिकारों की चर्चा आवश्यक हो गई थी। ऐसा तब ही हो सकता है, जबकि उन अधिकारों को सीमित किया जा रहा हो अथवा उन पर प्रश्नचिह्न लगाए जा रहे हों। जबकि इसके पहले की अवधि में नारी की हर स्तर पर सहभागिता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति धर्मग्रंथों में देखी जाती है, तब उसके अलग से उल्लेख की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती थी, क्योंकि नर और नारी के बीच विषमता की उस नमाज में कोई बात ही नहीं सोची जाती थी।

वैदिक युग में ऐसे ही स्वाभाविक सामाजिक संबंधों के प्रमाण मिलते हैं। वेदों में ऐसे कितने ही मंत्र हैं, जिनमें स्त्रीलिंग की क्रियाएँ हैं। इससे यही स्पष्ट होता है कि ये मंत्र महिलाओं द्वारा प्रयोग के लिए ही हैं। जैसे यजुर्वेद में कुमारी कन्याएँ प्रभु-स्मरण करती हुई श्रेष्ठ पति की कामना से यज्ञ करती हुई कहती हैं-

त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धि पति वेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥ — *यजुर्वेद ६/२*

हम कुमारियाँ परमात्मा का स्मरण करती हुई यज्ञ करती हैं। हमें उत्तम पति प्राप्त हों। पितृकुल से तो हमारा वियोग होगा, किंतु पतिकुल से ऐसा वियोग कभी न हो।

ऐसी ही प्रार्थनाएँ चारों वेदों में हैं। ऋग्वेद में एक मंत्र है जो स्पष्टतः स्त्रियों द्वारा उच्चारण किया जाने वाला है-

उदसौ सूर्यो अगाद् उदयं मामकोः अह,
तद्वद वला पतिमन्य साक्षि विषा सहि।
अहं केतुरहमूधहिमुग्रा बिवाचनी,
ममेदनु कृतुं पतिः सेहा नाया उपाचरेत्॥
मम पुत्रा शत्रुहणेऽथे मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सं जया पत्यौ म श्लोक उत्तमः॥

— *ऋग्वेद १०/१५९/३१*

सूर्य के ही साथ मेरा सौभाग्य भी उदित हो। उनकी साक्षी में मैं पति को प्राप्त करूँ। मैं यशस्विनी, ज्ञान संपन्न, प्रभावशाली वक्ता बनूँ। पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान एवं कर्म के अनुकूल ही व्यवहार करें।

मेरे पुत्र शत्रुहंता हों। मेरी पुत्री विराट व्यक्तित्व वाली हो और स्वयं अपने पति के यश को बढ़ाने वाले कार्य करूँ। इसी प्रकार काठक संहिता में प्रार्थना है–

घृतवन्तं कुलायिन रायस्पोष सहस्त्रिणम्।
वेदो बाज ददामु मे, वेदो वीर ददामु मे॥

—काठक संहिता ५/४/२३

वेद मुझे तेजस्वी कुल को सार्थक बनाने वाला समृद्धि-वर्द्धन ज्ञान दें। वेद मुझे वीर संतति दें।

वैदिक युग में नारी की पुरुषों जैसी इच्छाएँ, क्रियाशीलताएँ तथा ज्ञान के ऐसे प्रमाण वैदिक साहित्य में भरे पड़े हैं। विवाह के समय वर-वधू जो परस्पर संकल्प करते हैं, वे भी उन दोनों की मानसिक तथा सामाजिक समानता के अनुरूप हैं। ऋग्वेद, अथर्ववेद में दोनों के द्वारा संयुक्त रूप से उच्चारित किए जाने वाले मंत्र हैं, जिनमें परस्पर घुल-मिल जाने, प्रेमपूर्ण होने, एक व्यक्तित्व के स्वामी बनने, एक-दूसरे के प्रति समर्पित, निष्ठावान रहने के संकल्प अभिव्यक्त हैं। साथ ही वर और वधू द्वारा अलग-अलग कहे जाने वाले मंत्र भी हैं। एक मंत्र में वधू कहती है–

आशा शान्तं सौमनसं प्रणाँ सौभाग्यं रयिम्।
अग्निरनुव्रता भूत्वा सन्नह्ये सुकृतायकम्।।

—अथर्ववेद १४/२/५२

मैं यज्ञादि शुभ अनुष्ठान हेतु शुभ वस्त्र धारण करती हूँ। शांति, आनंद, संतति, सौभाग्य और समृद्धि की कामना करती हुई मैं सदा प्रसन्न रहूँगी।

शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय संहिता आदि में स्त्रियों द्वारा उच्चारित होने वाले मंत्रों का निर्देश है।

ताड्य ब्राह्मण में निर्देश है कि यज्ञ में स्त्रियाँ वीणा लेकर सामवेद का गान करें। श्रद्धात्यायन श्रौत सूत्र में ऐसे स्पष्ट निर्देश हैं कि अमुक वेदमंत्रों का उच्चारण नारी करे। लाटयान श्रौत सूत्र में विधान है कि पत्नी सामवेद के मंत्र सस्वर गाए।

यज्ञ में पति-पत्नी दोनों का सम्मिलित रहना आवश्यक होता है और यज्ञ वेदमंत्रों के बिना होता नहीं। श्रीरामचंद्र जी को जब सीता जी

की अनुपस्थिति में यज्ञ करना पड़ा तो उन्हें उनकी सोने की बनी प्रतिमा रखनी पड़ी। तैत्तिरीय संहिता में यह स्पष्ट कहा गया है कि–

यज्ञो वा एष यौऽपत्नीकः।
बिना पत्नी के यज्ञ नहीं होता।

इसी संहिता में एक अन्य सूक्त है–

अथो अर्धोवाएष आत्मनः यत पत्नी।

पत्नी, पति की अर्द्धांगिनी है। अतः उसके बिना यज्ञ अपूर्ण है।

यह वैदिक युग की स्थिति थी। उस समय स्त्री–पुरुष की समानता नितांत स्वाभाविक मानी जाती थी। उनके बीच भेद–विभाजन की तब कल्पना भी नहीं की जाती थी।

बाद में जब स्त्रियों पर प्रतिबंध लगने शुरू हुए, तब उनके द्वारा वेदाध्ययन तथा ब्रह्मविद्या प्राप्ति के अधिकार भी सीमित करने की बात उठी। उस समय नारियों के इन अधिकारों के पक्ष में तर्क दिए जाने लगे। ऐसे तर्कपूर्ण प्रतिपादन वैदिककाल के पश्चातवर्ती धर्मग्रंथों में पाए जाते हैं–

आहुरप्युत्तम स्त्रीणाम् अधिकार तु वैदिके।
यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्यश्च तथाऽपराः॥—*व्योम संहिता*

श्रेष्ठ स्त्रियों को वेद के अध्ययन एवं वैदिक कर्मकांड का उसी प्रकार अधिकार है जैसे उर्वशी, यमी, शची आदि ऋषिकाओं को प्राप्त था।

भविष्य पुराण में उत्तर पर्व ४/१३/६२, ६३ में कहा गया है–

या स्त्री भर्त्ता वियुक्तापि स्वाचारे संयता शुभा।
सा च मंत्रान् प्रगृह्णातु स भर्त्री तदनुज्ञया॥

उत्तम आचरण वाली विधवा स्त्री वेद मंत्रों को ग्रहण करे। सधवा नारी अपने पति की अनुमति से वेद मंत्रों का पठन–पाठन करे।

ऐसे स्पष्ट प्रतिपादन यही तथ्य सामने रखते हैं कि प्राचीन समय में नारी का नर की ही तरह ज्ञान, तप, तेजस तथा ब्रह्मवर्चस में अग्रणी होना सामान्य एवं स्वाभाविक बात थी। उसे पददलित बनाने के प्रयास तो स्वयं पुरुषों के भी पतनकाल में ही प्रारंभ हुए। किसी भी उन्नत समाज में दोनों की ही समान प्रगति अनिवार्य मानी जानी स्वाभाविक ही है।

मात्र लौकिक और भौतिक जगत ही नहीं, धर्मोपदेश के, योगाभ्यास के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ, पुरुष, ऋषियों के समतुल्य ही अपना कार्य करती रही हैं तथा अनेकों ऋषिकाएँ-धर्मोपदेशिकाएँ प्राचीनकाल में होती रही हैं। उन्होंने इस उत्तरदायित्व का भली प्रकार निर्वाह किया है। इसके कितने ही उदाहरण पुराण, शास्त्रों में मिलते हैं। महाभारत के शांति पर्व अध्याय ३२० में विदुषी योग पारंगत सुलभा का एक संस्मरण इस प्रकार है–

सा प्राप्य मिथिलाँरम्यां प्रभूत जन संकुलाम्।
भैक्ष्यचर्यापदिशेन ददर्श मिथिलेश्वरम्॥
ततोऽस्याः स्वागतम् कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम्।
पूजिताँ पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत्॥

वह योगिनी संन्यासिनी सुलभा जनसमूह से पूर्ण मिथिला में भिक्षा के उद्देश्य से राजा जनक के पास गई।

तब राजा ने उसका स्वागत करके श्रेष्ठ आसन दिया। पाँवों को धोकर उसकी पूजा की तथा श्रेष्ठ अन्न से उनको तृप्त किया।

अथ भुक्तवता प्रोत्या राजानां मंत्रभिर्वृत्तम।
सर्व भाष्यविदा मध्येवादेयामास भिक्षुकी॥
सुलभात्वस्य धर्म्मेषु मुक्तो नेति ससंशया।
सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपते॥

प्रेम से भोजन करके मंत्रियों से युक्त राजा को सब भाष्य जानने वालों के मध्य में उन संन्यासियों ने प्रेरणा की।

सुलभा को संशय हुआ कि वह राजा धर्मों से मुक्त है या नहीं। योग को जानने वाली अपने सत्य से राजा के सत्य में प्रवेश कर गई।

नेत्राभ्याँ नेत्रयोरस्य रश्मीन्संयम्यरश्मिभिः।
सास्म सचोदयिष्यन्ति योग बधैर्वबन्धह॥
जनकोऽप्युत्स्मयन्नाजा भावमस्या विशेषयनु।
प्रति जग्राह भावेन भावयस्या नृपोत्तम॥

तब उस सुलभा ने अपने नेत्रों की ज्योति से राजा के नेत्रों की ज्योति को काबू करके योग के बंधनों से राजा को बाँधकर प्रेरणा की।

राजा जनक भी मुस्कराता हुआ उसके भाव को अधिक जानकर अपने भाव से उसके भाव को ग्रहण कर गया।

गायत्री मंत्र और वेदाधिकार से स्त्रियों को वंचित करने वाले तनिक विचार करें कि जिनने वेद मंत्रों का सृजन किया, वे ही उनके पठन-पाठन से वंचित कैसे रखी जा सकती हैं।

वेद मंत्रों के विनियोगों में उनके देवताओं, छंदों तथा ऋषियों का उल्लेख है। देव ऋचाओं में ढेरों ऐसी हैं जिनकी दृष्टा-स्रष्टा ऋषिकाएँ-महिलाएँ हैं। यह उन वेद मंत्रों के विनियोगों को देखने से स्पष्ट विदित होता है। यहाँ कुछ थोड़े से उदाहरण प्रस्तुत हैं जिससे यह जाना जा सकता है कि किस मंत्र की कौन ऋषिकाएँ हैं? नीचे के उल्लेख में ऋषिकाएँ-वेद संदर्भ और मंत्र के प्रथम अक्षर दिए जा रहे हैं-

(१) सार्प राज्ञी कद्रू-यजु. ३/६-आयंगौः (२) लोपा मुद्रा-यजु. १७/११-नमस्ते हरसे (३) सरस्वती-यजु. २८/२४-होता यक्षत् (४) गायत्री-साम. पू. १/९/१-अग्ने ओजिष्ठ (५) वाजिनाँ स्तुति-साम. पू. ५/५/९-आविर्मर्य्या (६) शश्वत्यागिंरस्यासंगस्य पत्नी-ऋ. ८/१/३१-पन्वस्य (७) आपालो के भी-ऋ. ८/९१/१-कन्यावा (८) सिकता निवावरी-ऋ. ८/८६/११-अभिक्रंदन् (९) यमी वैवस्ती-ऋ. १०/१०/१-ओचित् (१०) अदितिर्वा दाक्षायणी-१०/७२/१-देवानानु (११) वागाम्भरणी-ऋ. १०/१२५/१-अहं रुद्रेभिः (१२) रात्रिर्वा भारद्वाजी-ऋ. १०/१२७/१-रात्रीव्यखद् (१३) इंद्राणी-ऋ. १०/१४५/१-इमां खनामि (१४) श्रद्धा कामायनी-ऋ. १०/१५१/१ श्रद्धयामि।

अत्रत्रिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेदपारगा।
अधीत्य सकलान् वेदान् लेभेऽसंदेहमक्षयन्॥

—महा. उद्योग. अ. १०८ शू. १८, १९

यहाँ पर शिवा नामावली सिद्धा ब्राह्मणी वेदों को पार करने वाली सब वेदों को पढ़कर अक्षय विश्वास को प्राप्त हुई।

वाल्मीकि रामायण में ऐसे कितने ही प्रसंग आते हैं, जिनमें स्त्रियों का यज्ञोपवीत धारण, अग्निहोत्र एवं संध्या करने का उल्लेख है। स्पष्ट है कि यह दोनों ही धर्मकृत्य वेद मंत्रों के द्वारा संपन्न होते हैं। संध्योपासना में गायत्री मंत्र का प्रयोग अनिवार्य है। अग्निहोत्र क्रिया भी वेद मंत्रों के बिना नहीं हो सकती। इससे सिद्ध है कि स्त्रियों को सदा से वेद मंत्रों के उच्चारण का, गायत्री उपासना का एवं यज्ञ कार्यों का पुरुषों के समान ही अधिकार रहा है।

होताऽध्यर्युस्तथोद्गाता हयेन् समयोजन्।
महिष्या प्रवृत्त्याथ वावातापरां तथा॥

–वाल्मी. बाल. स. १४

होता, अध्वर्य्यु, उदगाता आदि याज्ञिकों की सहायता से कौशल्या यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हुई।

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रत परायणा।
अग्नि जुहोतिस्म तदा मंत्र वत्कृतमंगला॥

–वाल्मी. अयोध्या. स. २०

धर्मनित्या यथा कालमग्नयागारपराभव।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय॥

–वाल्मी. अयोध्या. स. ५८

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य परस्थास्ये येन राघवः॥

–वाल्मी. अयो. स. ७५

जब राम कैकेयी के महलों से कौशल्या के महलों में पहुँचे, तब वह कौशल्या सूक्ष्म वस्त्र पहने प्रसन्नचित्त व्रतपरायण होकर मंगलार्थ वेदमंत्रों से अग्निहोत्र कर रही थी। राम ने वन से सारथी के हाथ कौशल्या को संदेश दिया– हे देवि ! नित्य धर्म का पालन करते हुए समयानुसार अग्निहोत्र का पालन करना और देवि दशरथ के चरणों को ईश्वर की भाँति पूजना।

जब भरत मामा के घर से आए तब कौशल्या ने कहा, "मैं स्वयं ही सुमित्रा को साथ लेकर सुखपूर्वक अग्निहोत्र को आगे करके वहीं चली जाऊँगी जहाँ राम हैं।"

सन्ध्या कालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलाँ संध्यार्थे वर वर्णिनी॥

—वाल्मी. सुंदर स. ४९

हनुमान सीता को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब अशोक वाटिका में पहुँचे तब प्रातः अनुमान किया–संध्याकाल हो जाने से संध्या करने के लिए वह श्यामा संध्या सुंदरी सीता इस शुद्ध जल वाली नदी पर अवश्य आवेगी।

वैदेही शोक संतप्ता हुताशनमुपागमत्॥

—वाल्मीक सुंदर स.

जब हनुमान जी के पकड़े जाने का समाचार सीता को मिला तो सीता शोक से दुखित होकर अग्निहोत्र करने चली गई।

काँचनीमम पत्नी च दीक्षायाँ यज्ञाँश कर्मणि॥

–वाल्मीक उत्तर. स. ९१।२५

सीता के अभाव में राम ने यज्ञ कार्य के लिए सोने की सीता बनाने की व्यवस्था करते हुए कहा, "यज्ञ कर्म की दीक्षा में सीता के स्थान में मेरी सोने की पत्नी बनाओ।"

यज्ञोपवीत मार्गेणछिन्ना तेन तपस्विनीं।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना॥

–वाल्मीकि रामायण

रावण ने बलपूर्वक सीता का यज्ञोपवीत तोड़ डाला। इस पर दुखी होकर सीता पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियत मानसः।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्॥
प्रगृह्यशिरसापात्रीं हविषा विधिवत्ततः।
महते दैवतायाज्यं जुहाब ज्वलितालिले॥

–बा. अयो. स. ६

पुरोहित ने अभिषेक का समाचार सुनाया, तो पुरोहित के चले जाने पर राम ने स्नान किया और मन को एकाग्र करके अपनी सुंदर नेत्रों वाली पत्नी सीता के साथ प्रथम संध्या की। फिर प्रतिष्ठापूर्वक सामग्री के पात्र को लेकर विधि अनुसार परमात्मा की आज्ञापालन के लिए अग्नि में घृत का हवन किया।

यह उदाहरण पढ़–सुनकर भी यदि कोई नारी जाति को अपावन और ब्रह्मचर्य साधनाओं के अयोग्य ठहराता है तो उसे विधर्मी से कम की संज्ञा नहीं दी जानी चाहिए। यह मानना पड़ेगा कि उनकी दृष्टि मध्यकाल के इतिहास तक है। वैदिक संस्कृति से वे कोरे व छूँछे ही समझे जाने चाहिए।

दूसरे धार्मिक ग्रंथों के आख्यान भी ऐसे ही हैं, यथा–

हारीतेनोक्तम्—द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्य्या। वधूनां तूपस्थिते विवाहें कथांचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः॥

हारीत ने कहा है–स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—ब्रह्मवादिनी और सद्योवधु। उनमें से ब्रह्मवादिनियों के लिए यज्ञोपवीत अग्निहोत्र वेदाध्ययन और अपने घरों में भिक्षा माँगना तथा सद्यः वधु के लिए विवाह के उपस्थित होने पर यज्ञोपवीत करके विवाह कर देना चाहिए।

श्वेत चम्पक वर्णाभा रत्न भूषण भूषिताम्।
ब्राह्मि शुद्धा शाकाधानां नाय यज्ञोपवीतिबीम॥

–ब्रह्मवैवर्त

सफेद चमेली के रंग के शोभायमान रत्नाभूषणों वाली उस सुंदरी को नाग के समान सुंदर यज्ञोपवीत पहने देखा।

यजमानः सपत्नीकः पुत्र पौत्र समन्वितः।
पश्चिमं द्वारमासाध्य प्रविशेद् योग मण्डपम्॥

–भविष्य. मध्यम. भाग २ अ २०

यजमान अपनी पत्नी तथा पुत्र-पौत्र सहित पश्चिम द्वार को प्राप्त होकर यज्ञमंडप में प्रवेश करे।

प्रावृत्तां यज्ञोपवीतनीमभ्युदानयञ्जपेत्।
''सोमोऽददत् गन्धर्वा'' येति॥

–गोमिल २।१।१९

तब कन्या को कपड़े से ढककर जनेऊ पहनाकर पति अपने सामने निकट लाकर सोमोऽददत् मंत्र पढ़े।

यह शास्त्रीय अभिवचन इस बात के प्रमाण हैं कि वैदिककाल से ही स्त्रियाँ आध्यात्मिक विकासधारा में पुरुषों के समान ही प्रमाणित हुई हैं। उन्हें रोका नहीं जाना चाहिए, क्योंकि उनकी श्रेष्ठता को अस्वीकृत करने, गरिमा की अवहेलना करने से पुरुष को व संपूर्ण समाज को क्षति ही उठानी पड़ती है।

❐

मुद्रक–युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)